THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180763

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H.83/M67C. Accession No. H.2066.

Author मि. प्रा. शिवसागर

Title चाँद के हाथों

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रिय गणेश,

मैं तो दुर्दिन में बादल के छाँव का भी शुक्रगुज़ार हूँ। तुम तो एक विशाल वृक्ष हो! कैसे धन्यावाद दूँ?

—शिव

: १ :

पानी पड़ने से मकई की डंटलें बुरी तरह भीग गई थीं। लेकिन भुवन को कोई चिन्ता नहीं थी कि कपड़े भीग रहे हैं अथवा दुरुस्त हैं। वह पत्तों से टकराता, अनमना-सा बढ़ा चला जा रहा था। अभी-अभी पानी का बरसना बन्द हुआ था। जमीन गीली हो रही थी और मिट्टी तथा मकई के पत्तों, बालों और डंटलों से एक भीनी-भीनी गन्ध हवा में भारीपन ला रही थी। शाम होने में कोई कसर नहीं रह गई थी। दूर-दूर से किसी को किसी के पुकारने की आवाज आती और फिर एक खामोशी सारे वातावरण को ढक लेती जैसे उसी खामोशी के चंगुल में रात का अँधेरा समूचे गाँव को जकड़ लेगा और लोगों की परेशानी, चिन्ता, ताक़त सब-के-सब ऐंठकर रह जायेंगी और तब मजबूरी की नींद समूचे गाँव को लिपटा लेगी, सन्तोष और थकान की थपकी देती हुई।

भुवन का दिमाग झनझना रहा था। पता नहीं वह कहाँ जाय और क्यों जाय। आज बाईस साल से वह इस गाँव को जानता है—तब से, जब कि काँग्रेस का पहला आन्दोलन थक चुका था। उसका जन्म देश की थकान और ऊब के बीच हुआ था—इसी गाँव में—इसी गाँव के किसी कच्चे-पक्के घर में। और आज वह निराशा, थकान और ऊब से लदा हुआ गाँव के बाहर जा रहा है—शायद बराबर के लिए। लेकिन क्यों? यही अधिकार का प्रश्न उसके मस्तिष्क को झकझोरता है, तभी पत्तों के तरल स्पर्श से वह कुछ सजग होता है, सोचता है—क्यों? यहाँ के पेड़, पौधे, खेत के मेंड़, आम की गाछी, पोखरों के निकट का मैदान जहाँ बचपन में वह

भैंसे चराया करता, वह घना-सा बट का बूढ़ा वृक्ष जिसकी मजबूत फैली हुई डालियों पर झूलों की रगड़ के निशान पड़े हैं—उसे याद आते, और वह सोचता चला जाता कि क्या अब इन चीजों को वह नहीं देख सकेगा ? क्या बचपन की तस्वीरें, किशोरावस्था के रंगीन सपने आज जवानी में ही खत्म हो जायेंगे—मिट जायेंगे। लेकिन वे मिटेंगे तो कैसे ? वे तो जड़ हैं—किसी की बात समझते नहीं हालाँकि पहचानते सबको हैं। मुहब्बत सब से है। वे मिट नहीं सकते। वे बदस्तूर वहीं क़ायम रहेंगे जहाँ रहते आए हैं। भुवन उनके लिए मिट रहा है क्योंकि यह उनकी बातें समझता है। वे कभी नहीं मिट सकते क्योंकि भुवन के दिमाग़ में बराबर ताज़ा-बासी होते रहेंगे। तो क्या सचमुच ही वह फिर लौटकर नहीं आयेगा और तभी भुवन के आगे धुँधला पड़ जाता और वह हाथों के सहारे पत्तों को हटाता आगे बढ़ जाता। झड़-झड़कर कुछ बूँदें उसके अस्त-व्यस्त कपड़ों पर गिर पड़तीं। पता नहीं चलता कि वे आँखों से झड़ीं या पत्तों से। लेकिन पीड़ा से उसका अंग-अंग कराह रहा था। उसकी निर्लिप्त आँखों में मोह का दर्द सिमटता जा रहा था जिसे वह रोकना चाहता और आँखें अपने-आप छोटी हो जातीं। भुवन ने पैर तो बढ़ा दिए, लेकिन अब वह महसूस कर रहा था कि इस बदबख्त में बेघर-बार होना कितना कठिन है, जबकि वह किसी को नहीं जानता। इसी साल उसने बी० ए० किया है। घर की गृहस्थी कुछ ऐसी चमकी हुई थी कि होस्टल में बड़ी शान की जिन्दगी कटी। अब इस फटेहाली की दशा में उसके मित्र भी तो 'बोर' समझेंगे। और वह घर लौट नहीं सकता अब।

बचपन से प्रायः वह बाहर ही रहा। मिडिल पास करने के बाद पटना चला आया, और तभी से छुट्टियों के अलावा वह कभी कहीं नहीं जाता। घर की परिस्थिति से अनभिज्ञ—साहित्य और इतिहास की गोल-मटोल बातों को ही जिन्दगी का मापदण्ड मान बैठा। यह पढ़ाई का दोष है या

समाज का—कौन कहे ? लेकिन वह सोचता था कि उसका घर स्वस्थ है। शहर की गन्दगी से दूर वहाँ मकई के लहलहाते पौधे होते हैं, वहाँ आम की गाछी होती है, जहाँ कई बार अगोरवाही करते समय उसने खिचड़ी पकाकर खाई है। उसका घर खुशहाल है जहाँ से सौ रुपया प्रतिमास आ जाया करता है और वह होटलों में 'चौप' वगैरह भी खा लिया करता है। उसके भाई बहुत भले हैं, स्नेहपूर्ण हैं। और उसकी माँ ?...अच्छा हुआ वह चली गई वरना आज वह गुलाम होता। कम-से-कम मोह तो अवश्य ही जकड़ लेता। और तब उसके पैर वहीं के वहीं गड़े रह जाते, उसी गीली मिट्टी में धँसे रहते जहाँ आज ईर्ष्या, घृणा और कलह की लगातार गूँज ही जिन्दगी की खान मानी जाती है। चन्द बीघे ज़मीन के लिए जहाँ स्नेह और सौहार्द्र को ताक पर रख दिया जाता है।

आज उसे पता चला कि इन्सान कितना नीच होता है, जो अपना खून भी नहीं पहचानता और झट पीने के लिये तैयार हो जाता है। उसने सोचा था कि पढ़ाई खत्म करने के बाद घर पर रहकर कुछ दिन आराम करेगा। फिर आगे की बात सोची जायगी कि उसका अगला क़दम किधर पड़े। लेकिन...उफ्, किस तरह उस रोज भाभी ने ताना मारा था। और जब उसने मना किया तो कहने लगी...''यही घर है जहाँ अलुआ-सुथनी खाकर लोग गुज़र करते थे और आज आप पढ़-लिख गए हैं तो रोब जमाने बैठे हैं।''

''क्यों बेकार की बातें करती हैं आप ? मैं इन सब चीज़ों को सुनने का आदी नहीं हूँ।'' भुवन ने टालने के विचार से कहा था। लेकिन वह कब टलने वाली थी। वह तो बहाना ढूँढती कि कब मौका मिले और वह सब को आड़े हाथों ले। भुवन की भाभी ने हाथ झमकाते हुए कहा—

''आदी नहीं हैं तो अलग हो जाइये न, किसने बाँध रखा है ?·हुँ हुँ... दिन-रात फेन बहाकर खेती-गृहस्थी चलावें 'वो' और रोब झाड़ें सब लोग।''

और यह कहकर जो उसने अपना मुँह बनाया तो खूबसूरत चेहरा भी चुड़ैल-सा होगया। भुवन टालना चाहता था इसलिए स्वयं चुपचाप टल गया। लेकिन उसकी भाभी न जाने कब तक यों ही बड़बड़ाती रही।

और उस रोज तो हद होगई। उसकी माँ मर चुकी है लेकिन तब भी बेचारी को शान्ति नहीं। दिन-रात बड़ी भाभी उसकी माँ को कोसती रहती है। भुवन ने लाख मिन्नतें की कि वह मर चुकी है—वह इन बातों को अब नहीं सुनती। उसे कुछ भी कहना अपनी ज़बान को तकलीफ देना है। लेकिन बड़ी भाभी को तो भुवन को सुनाना था। वह बकती ही रही। भुवन ने अपने भाइयों से कहा लेकिन कोई फ़ायदा नहीं। उसके सभी भाई शायद अपना हृदय बेच चुके थे और चुप्पी से शान्ति खरीदने का उपक्रम कर रहे थे। भुवन ने अपने को बहुत समझाया कि वह भी अपने अन्य भाइयों की तरह खामोश रहे, मन मार ले। लेकिन उसका हृदय उसे फटकारता, दुतकारता—"क्या यही माँ के स्नेह का बदला दे रहे हो? गाली सुनवाने के लिए ही माँ ने तुम्हें पैदा किया, पाल-पोसकर इतना बड़ा किया?" और तब वह सोचता कि आखिर उसकी बड़ी भाभी क्यों ऐसा करती है। क्या मेरे हृदय को चोट पहुँचाने के लिये? नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। मेरी माँ मर चुकी है। उसे कोई गाली नहीं दे सकता। और आज जब बड़ी भाभी ने माँ को गाली देना शुरू किया तो भुवन क्रोध से आगबबूला होगया। वह तय नहीं कर पाया कि क्या करे। वह गरजा, चिल्लाया, डाँटा, लेकिन बेकार। कोई असर नहीं। बड़ी भाभी बकती रही, और जोर-जोर से बकने लगी। भुवन के लिए यह असह्य होगया और लपककर उसने भाभी का मुँह बन्द कर दिया। फिर क्या था। गाली तो बन्द होगई लेकिन भुवन ने तलहथी हटाई भी नहीं थी कि बड़ी भाभी ने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। अपने-आप ज़मीन पर सर पटक-पटककर लय में चिल्लाने लगी—"दइया रे दइया! मार डाला रे दइया!"

चीत्कार से समूचा गाँव उलट पड़ा। बड़ी-बूढ़ी औरतें भी काफ़ी तादाद में इकट्ठी होगईं। और तब आये बड़े भाई साहब। भुवन तो गुम था जैसे पत्थर हो गया हो। उसे तो विश्वास भी नहीं हो रहा था कि कोई औरत इस तरह अभिनय भी कर सकती है। सब लोग उसे डाँटने लगे, "छीः छीः औरत पर भी कहीं हाथ उठाया जाता है।..."

"पढ़-लिखकर तुमने यह क्या किया !"

भुवन उन लोगों को समझाना चाहता कि उसने कुछ नहीं किया है। लेकिन उस हो-हल्ला में उसकी जबान बन्द थी। इस औरत ने मेरी माँ को गाली दी है—दुष्टा, और अब नाटक करती है। लेकिन मैं भी डरता नहीं। चिल्लाओ, जितना मन चाहे। अगर मैंने हाथ भी चलाया है तो ठीक ही किया है। माँ का ऋण चुकाना कोई पाप नहीं है। भुवन सोचता रहा। तभी उसके बड़े भाई साहब फूत्कार करते हुए आये और कहने लगे—"रोती क्या है। चलो यहाँ से। अब हम लोग इस घर में नहीं रह सकते। जल्दी निकलो।"

भुवन ऐंठकर रह गया—"छीः छीः अपने सगे भाई पर थोड़ा भी विश्वास नहीं। क्या हम लोग सगे भाई हैं? हम दोनों में एक ही खून बहता है? क्या यह भी उसी मां के गर्भ से पैदा हुआ है जिस माँ ने मुझे जन्म दिया? क्या इस जवान ने भी उसी माँ का दूध पिया है जिस माँ को अभी यह औरत...भुवन कुछ नहीं कह सका और चुपचाप चल दिया। केवल इतना कहकर कि...

"गृहस्थी आपकी बसाई हुई है। आप क्यों जाइएगा कहीं? मैं ही चला जाता हूँ।" और आँसुओं को दाबे, क्रोध, घृणा, ममता और पीड़ा से काँपता हुआ वह निकल पड़ा। वह कहीं दूर चला जाना चाहता है—बहुत दूर, जहाँ उसे कोई नहीं पहचान सके। वह अब घर नहीं लौट सकता। नहीं लौट सकता !

: २ :

प्लेटफ़ार्म पर केवल दो बत्तियाँ जल रही थीं। बेकार, अन्धकार से उलझने का प्रयत्न करती हुईं, जैसे पछता रही हों कि कहाँ से बैर मोल ले लिया। भादों की रात में ये टिमटिमाते हुए दो चिराग़—शैतान की झपकती हुई आँखों की तरह भयंकर और बीभत्स लग रहे थे। भुवन वहीं चक्कर काटता रहा। कहाँ जाये। प्लेटफार्म के पिछले किनारे पर फूलों के झुरमुट में कुछ भुनभुनाहट...कोई किसी को डपट रही है...फिर भुनभुनाहट... हँसी...अट्टहास और तब बिल्कुल खामोशी अन्धकार की ही तरह घनी, भयंकर। भुवन सोचता रहा। क्या वह घर लौट जाये? क्या उसके चले आने पर बड़ी भाभी अफ़सोस नहीं कर रही होंगी; कि फूलों के झुरमुट से औरत के हँसने की आवाज...क्या अफ़सोस करेंगी। ओफोह! कैसा अभिनय कर रही थी! जंगली...ज़रा-सी भी तमीज नहीं कि लोग क्या कहेंगे! इज्जत, खानदान, शान और पर्दो का नारा लगाने वाली न जाने कहाँ भूल गई थीं अपनी इज्ज़त, अपना पर्दा, अपनी शान...मुँह! सारे गाँव के लोग इकट्ठे थे, लेकिन लाज भी नहीं आई। छीः छीः क्या स्वार्थ इतना प्रबल हुआ करता है कि आदमी अपनी हस्ती तक भूल जाये, अपने अस्तित्व तक को तोल बैठे। स्वार्थ, भूख, नीचता, हैवानियत और कृत्रिमता, यही तो—यही तो आज के घर-घर में समाया है, घुसा हुआ है, घुन की तरह घुसा हुआ है—खाता जा रहा है। लेकिन उसका गाँव—क्या सदा-सर्वदा के लिए उसका प्यारा गाँव उससे दूर हो जायेगा और वह गाँव वालों की नज़र में मर चुका होगा, कहीं दूर चला जायेगा, दूर चला जायेगा और फिर नहीं

लौटेगा ?...लेकिन वह क्यों जाये ? उसका अपना गाँव है। अपनी जमीन है। अपना घर है। नहीं...नहीं...वह नहीं जायेगा। वह कहीं नहीं जायेगा। अपना अधिकार छोड़ना कायरता है—बुज़दिली है, पाप है। वह लड़ेगा। अपना हक लेकर अलग रहेगा। अलग रहेगा—तो रहकर क्या करेगा। एक पेड़ की शाखाएँ टूटकर बँट जायेंगी, कटकर गिर जायेंगी। जमीन के लिए, स्वार्थ के लिए, थोड़ी सी सुविधा के लिए...शाखाएँ काट दी जायेंगी, जिससे कि पेड़ का बोझ हल्का होजाये। पेड़ का बोझ हल्का होजाय...लेकिन पेड़ रहेगा ही कहाँ। जब शाखाएँ ही नहीं तो पेड़ की प्रतिष्ठा क्या...उसकी विशालता क्या...उसका अस्तित्व क्या। परिवार एक विशाल पेड़ है, जिसकी उपयोगिता तभी तक है जब तक उसके नीचे छाया है, शान्ति है, आनन्द है और थकान तथा परेशानी भुला देने की क्षमता है। नहीं...मैं ऐसे परिवार को परिवार नहीं मानता जहाँ खून की कीमत नहीं, स्नेह का स्थान नहीं, विश्वास की रोशनी नहीं।

आकाश में बादलों ने शोर मचाना शुरू कर दिया था। शायद बारिश हो इसलिए भुवन मुसाफिरखाने की ओर बढ़ा। उसके दिमाग़ में तूफ़ान उठ रहा था। आज जीवन में पहली बार ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई थी। भुवन ने सोचा था—जिन्दगी सरल है, मुलायम है, रंगीन है, स्वप्न और कल्पना से भरी हुई एक जीती-जागती तस्वीर है। उसने बहुत-से उपन्यास पढ़े थे। अभी भी, आज भी, इस समय भी, वह अपनी तुलना किसी उपन्यास के नायक से करने लगा जो कभी सुकुमार था सरल था और जिसकी जिन्दगी में भूचाल आता है—दरारें पड़ जाती हैं, चिन्ता की दरार...विरोध, नफ़रत और भूख की दरार, जिसे पाटने में अमुक नायक सफल नहीं हो पा रहा है कि अचानक कोई दैवी घटना घट जाती है और वही अमुक नायक मालामाल हो जाता है, परीजात् से ब्याह कर लेता है और तब...धत्...यह सब भ्रम है—कोरी कल्पना है। भुवन सोचता कि उसका भविष्य क्या है...वह

कहाँ जाये, क्या करे। क्या करे...सचमुच उसे कोई काम तो आता ही नहीं। तो क्या उसे भूखों मरना पड़ेगा, क्या उसकी सभी योग्यता, जिन्दगी भर की कमाई बी० ए० की डिग्री सभी बेकार हैं। लेकिन वह नौकरी तो कर ही सकता है। लेकिन...लेकिन उसी रोज तो सुन्दर महीनों खाक छानने के बाद घर लौटकर आया है। बेचारा, आज वर्षों से आइ० ए० का सर्टिफ़िकेट लिये घर बैठा है। कहीं कोई काम ही नहीं मिलता। भुवन सोचता रहा, सोचता रहा। उसके मस्तिष्क में कभी-कभी बेकार की बातें भी चक्कर काटने लगीं। वह मुसाफिरखाने में पहुँचकर जगह की तलाश करने लगा कि थोड़ी देर बैठ सके—इतमीनान करे, सोचे कि इतने में स्टेशन की घंटी टनटना उठी। एकाएक सारा स्टेशन जाग पड़ा जैसे किसी ने मधु-मक्खियों को खोते में ढेला फेंककर भड़का दिया हो। चेतना की एक थकी लहर दौड़ पड़ी। भुवन भी थोड़ी देर के लिए सतर्क हो उठा। लेकिन उसने महसूस किया कि समूचे वातावरण की उस थकी चेतना में भी एक अजीब निराशा थी, अन्धकार की तरह घुली-मिली। भुवन ने महसूस किया कि सब-के-सब विषाद और मोह में लिपटे हुए हैं...सारा वातावरण ही विषादमय है...कहीं जिन्दगी नहीं। केवल निर्जीव साँस चल रही थी जैसे। छोटे बाबू ने भी हाँफी लेते हुए खलासी को पुकारा। जैसे वह अपने-आपसे चिढ़े हों। अपने पेशे से चिढ़े हों, कि कहाँ से यह आफत आई कि नींद भी हराम होगई। टिकटघर की खिड़की खुल चुकी थी जिससे होकर बत्ती के मद्धम प्रकाश में भुवन ने देखा छोटे बाबू बीड़ी सुलगा रहे हैं...स्थूल-काय, साँवला, भद्दा शरीर और तोंद पर ही फटी हुई बनियाइन अटकी हुई। दाढ़ी बढ़ी हुई, चेहरा पचपचा-सा, जिसे देखकर घृणा तो नहीं दया आती कि बेचारे रात-रात-भर जागकर पेट पोसते हैं इन्हें क्या पता कि 'पेरिस' का फैशन क्या होता है, 'अमरीकी ढंग' क्या है डिमेन्सी क्या बला है और चेहरे पर तेल-सा जो यह पचपच का एक पर्त पड़ा हुआ है उससे क्या

हानि है। वह तो कमाता है और खाता है। बीवी की मुहब्बत फूली भी नहीं होगी कि बच्चों ने हाथ फैला दिए होंगे। स्नेह दे या प्रेम करे। और स्नेह में प्रेम तथा कर्तव्य दोनों ही शामिल हैं। बेचारे छोटे हैं बाबू!!

भुवन की विचारधारा टूटी, जब गाड़ी की धमक सुनाई दी। बिना सोचे-समझे उसने बनारस का टिकट कटा लिया। बाहर मेंह पड़ने लग गया था—टप्-टप्। प्लेटफार्म पर पहुँचते ही गाड़ी आगई। भीड़ ऐसी कि भुवन अकबका गया। थोड़ी देर के लिए उसकी सारी चिन्ता गायब होगई और वह गाड़ी में किसी कदर सवार हो जाने के लिए इधर-उधर दौड़ने लगा। उसने घर छोड़ दिया है, परिवार छोड़ दिया है, गाँव छोड़ दिया है, गाँव के खेत-खलिहान सब छूट गए हैं, लेकिन अभी उसे गाड़ी पकड़नी है। पैसे की कमी से ऊँचे दर्जे का टिकट ले नहीं सका। पहले तो बराबर इन्टर क्लास में ही चला करता लेकिन तब विद्यार्थी था, रईस था, साहित्यिक था, होने वाला अफ़सर था—'जिलाधीश, न्यायाधीश और यहाँ तक कि देश का महानतम व्यक्ति था। लेकिन आज वह असहाय है, उदास है, थका है, और है डारविन के अनुसार मनुष्य का आदि-रूप एक मांस-पिंड! आज जिन्दगी उसके पैरों में लिपट गई है जो चलने नहीं देती कल तक तो जिन्दगी उसके सर पर थी, आँखों के नशे में थी। नहीं, नहीं, हवा में थी जिसे वह छू नहीं पा रहा था। लेकिन आज? गाड़ी खिसकने को आई तो वह लपककर एक डब्बे में घुस गया। वहाँ पहले से ही काफी आदमी खड़े थे जो बैठे हुए बदतमीज मुसाफ़िरों को ईर्ष्या और क्रोध से घूर रहे थे। भुवन ठीक खिड़की के सामने खड़ा था। उसके सामने वाले बेंच पर ताश जमा हुआ था लेकिन उनमें से एक मुसाफिर पिछले स्टेशन पर उतर गया था और तीन जने बैठे कहकहे लगा रहे थे, बीड़ी फूँक रहे थे। थर्ड क्लास कम्पार्टमेन्ट—बीड़ी, चना बादाम का तहखाना सब की देह से सड़े दही की-सी दुर्गन्ध आ रही थी। अभ्यास न हो तो इस कम्पार्टमेन्ट में नये-नये

सफर करने वाले का दिमाग़ फट जाय, वमन होजाय, चक्कर आजाय। लेकिन भुवन आदी न होते हुए भी आज आदी हो रहा था। पता नहीं आगे इससे भी भयंकर दुर्गन्ध और सड़ाँध से भरे वातावरण में ही दिन-रात रहना पड़े। यह भी हो सकता है कि उसके शरीर से ही कभी ऐसी सड़ाँध निकलने लगे जिससे एक कम्पार्टमेन्ट तो क्या सारा मुहल्ला ही महक जाये। और वह खड़ा रहा, एक-एक को घूरता हुआ। उसकी दाहिनी तरफ, बिल्कुल किनारे, एक बुड्ढा खाँस-खाँसकर कफ और थूक बेंच के नीचे फेंकता जा रहा था। जब वह जोर-जोर से खाँसने लगता तो सारा कम्पार्ट-मेन्ट ही गूँज उठता, लेकिन किसी को फुर्सत नहीं थी कि उस तरफ ध्यान दे। कुछ तो ऊँघ रहे थे और कुछ गप्पें मार रहे थे और कुछ ऐसे भी किरानी टाइप के जवान थे जो खिड़की की राह बाहर अन्धकार में कुछ ढूँढ रहे थे।

गाड़ी को खुले लगभग दो मिनट हुए होंगे कि सामने बैठे हुए ताश खेलने वालों में से एक ने भुवन से पूछा—

"क्या आप ताश खेलना जानते हैं ?"

भुवन का ध्यान कहीं और था। उस व्यक्ति ने फिर पूछा तब कहीं उसका ध्यान टूटा। वह अकचकाकर इधर-उधर देखने लगा।

"जी, मैं आप से ही पूछ रहा हूँ क्या आप ताश खेलना जानते हैं ?" उस यक्ति ने ज़रा मुस्कराते हुए पूछा और उसके बाद बीड़ी का लम्बा कश खींचकर एक चुटकी बजा दी कि राख झड़ जाये और फिर मुँह बनाये मुस्कराता हुआ भुवन को देखता रहा।

भुवन उस समय आपे में नहीं था। वह ज़रा झेंप गया और सिट-पिटाता हुआ बोला—

"जी, जानता हूँ, लेकिन खेलूँगा नहीं।"

"क्यों ? ताश खेलना आप पसन्द नहीं करते ? आइये, आइये।" उस

व्यक्ति ने जगह ठीक करते हुए कहा। भुवन ने देखा उसकी उम्र लगभग ४१ साल की होगी। श्याम वर्ण, कानों तक लटकते हुए बड़े-बड़े कुछ-कुछ घुँघराले बाल, चौड़ा ललाट—जिससे पौरुष और आकर्षण टपक रहा था। उस अधेड़ ने अपनी बड़ी-बड़ी मूछें ऐंठ रखी थी। उसकी आँखों में एक अजीब लाली थी, जमे खून की तरह, जिसे देखकर कोई भी डर जाय। चौड़ी छाती, झुका हुआ घाटी की तरह उदार कंधा और लम्बी भुजाएँ उसकी दिलेरी की तस्वीर खींच रही थीं। भुवन ने उसे देखा और झुक गया। उसने महसूस किया कि इस व्यक्ति के भीतर एक सम्मोहन है, एक विश्वास है और साथ ही भय उत्पन्न करने वाली एक भंगिमा भी। भुवन उस अधेड़ की आरजू टाल नहीं सका।

खेल शुरू होगया। क़हक़हे पर क़हक़हे लगने लगे। दाँव पर पेंच चलने लगे। लेकिन भुवन मौन था। वह कुछ नहीं बोलता, मशीन की तरह पत्तियाँ फेंकता जाता और हँसे भी तो कैसे? सारी जिन्दगी जो उसके सामने खड़ी है, मुँह बाए निगल जाने को। जैसे जिन्दगी ही मौत बन गई हो। जिन्दगी और मौत, मौत और जिन्दगी। दोनों एक हैं, आज भुवन की जिन्दगी ही मौत बन रही है—उसे डँस रही है। फिर भी भुवन जिन्दा है। हँसता नहीं, तो रोता भी नहीं—गुमसुम, खामोश। अधेड़ उसका गुइयाँ था, वह बाज़ी पर बाज़ी जीत रहा था। बाहर अन्धकार खड़ा था, जोरों से पानी पड़ रहा था खिड़की-दरवाजे सभी बन्द। कभी-कभी हवा का भयंकर झोंका आता और खिड़कियों से टकराकर, किनारे वाली टूटी हुई खिड़की की राह घुस पड़ता, पानी के एक उफान से सारा कम्पार्टमेन्ट सिहर उठता। भुवन सोच रहा था, वह कहाँ जा रहा है? क्या करेगा? क्या खायगा?...'लाल पान का गुलाम'...इतने जोरों से आँधी-पानी सभी खिड़कियाँ बन्द, कहीं हवा के झोंके को राह नहीं मिली तो?...काश, गाड़ी उलट जाती।

"आपको कहाँ जाना है ?" ताश बटोरते हुए अधेड़ ने पूछा, भुवन को उम्मीद नहीं थी कि कोई उससे यह प्रश्न भी कर सकता है, और उसने अब तक इस पर सोचा भी नहीं था कि अगर किसी ने ऐसा पूछ ही दिया तो वह क्या उत्तर देगा। भुवन को चुप देखकर अधेड़ का कौतूहल जागा। जिस राह पर भुवन ने डरते-सहमते कदम रखा था, आज से कई साल पहले ही वह उस मंजिल को पार कर चुका था। और आज वह गुण्डा है। समूचा बनारस उसके नाम से डरता है। आज के युग में जब शासन-व्यवस्था इतनी कड़ी हो गई है, वह दिन-दहाड़े किसी की हड्डी तोड़ सकता है। समूचे शहर में वह रामू के नाम से मशहूर है। वह कहाँ से आया, कौन जात का है—यह किसी को भी पता नहीं, लेकिन रामू गुण्डा है, वह किसी का ताव बर्दाश्त नहीं करता—यह सब कोई जानते। भुवन को देखते ही वह समझ गया था कि यह नौजवान परेशान है, दुःख का मारा है, उसने ताश खेलना बन्द कर दिया। बाहर अभी भी पानी बरस रहा था, रामू ने भुवन को अपनी बगल में बैठा लिया। काफी देर तक दोनों खामोश रहे। उस डब्बे के सभी लोग क़रीब-क़रीब ऊँघ रहे थे। रात अधिक हो गई थी। रामू ने जब देखा कि उसके दूसरे साथी भी ऊँघ रहे हैं तो उसने धीरे से पूछा—

"कहाँ तक जायेंगे आप ?"

"क्या बताऊँ कि कहाँ तक जाना है।" भुवन ने उदास हँसी हँसते हुए कहा। जवाब देते समय वह डब्बे की छत को देख रहा था और सोच रहा था कि गाड़ी के साथ यह छत भी चल रही है लेकिन पता नहीं चलता कि वह चल भी रही है। उसके इस अनमने भाव को देखकर रामू ने स्नेह और आदेश के स्वर में पूछा—

"आखिर कहीं तो जा ही रहे हो ? क्या इरादा है ? कहाँ तक का टिकट लिया है ?"

"टिकट तो बनारस तक का ही है।" भुवन ने साँस छोड़ते हुए कहा।

न जाने उसके भाई और अन्य परिवार वाले क्या कर रहे होंगे, हूँ...सो रहे होंगे और क्या ?

"तो ठीक है, बहुत अच्छा है, मैं भी वहीं का रहने वाला हूँ।" रामू ने बड़े तपाक से जवाब दिया। "मालूम पड़ता है तुम दुःखी हो और ऐसा भी लगता है तुम घर छोड़कर भागे हो ?"

भुवन आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था कि आखिर यह देव है या दानव। न जाने क्यों भुवन का मन उस असाधारण आदमी की ओर अपने-आप खिंचा चला जा रहा था। वह परेशान था कि उसके भाव को रामू ने भाँपते हुए कहा—

"क्या तुम्हे आश्चर्य हो रहा है कि आखिर मैं जान कैसे गया ? मैं आज से नहीं बचपन से ही लोगों के बीच रहता आया हूँ—जिन्दगी से भरे लोगों के बीच बराबर मैं उन्हीं लोगों के बीच में ही पला हूँ जिन्होंने जीवन के हजारों चढ़ाव-उतार देखे हैं। और सच पूछो तो मेरा पेशा भी यही है। मेरी आँखों को कोई भी धोखा नहीं दे सकता और बिना समझे तुमने बनारस का टिकट ले लिया है—तुम्हारी मनोदशा बता देने के लिये क्या यही काफी नहीं है ?"

भुवन मुँह बाए देखता रहा—अवाक् हत-प्रभ, खोया-खोया। उसके मस्तिष्क पर लगातार प्रहार पर प्रहार हो रहे थे। उसे यह बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था, क्या सचमुच उसके जीवन का नया अध्याय आरम्भ होगया ? क्या यह रामू हमारी मदद कर सकेगा ?...लगता तो है। इसके चेहरे से तो सचाई ही झलकती है। काश, यह विक्रमादित्य का युग होता और रामू के वेश में स्वयं विक्रमादित्य ही होते। या यह बहादुर कुछ ऐसा चमत्कार करता कि मैं बहुत बड़ा बहुत महान् , अजेय, निर्द्वन्द हो जाता। काश, यह रामू कोई चमत्कारी महात्मा होता और बिजली की तरह मेरे घर पहुँचकर लोगों को डाँटना-फटकारना शुरू कर देता। लेकिन नहीं, वह अब घर नहीं

जा सकता, कभी नहीं जायगा।

कुछ देर तक रामू यों ही सर लटकाये बैठा रहा कि अचानक पूछ बैठा—

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"भुवन।"

"इसके पहले क्या करते थे, खेती गृहस्थी या......"

"नहीं, मैंने इसी साल बी० ए० किया है।" भुवन ने बीच ही में बात काटते हुए उत्तर दे दिया।

"अच्छी बात है, मैं सब-कुछ समझ गया। तुम चलो बनारस—मेरे साथ ही रहना। विश्वास करो, मैं तुम्हें अपना छोटा भाई ही समझूँगा। लेकिन एक बात है लोगों के भड़काने में मत आना, कोई शिकायत हो तो मुझसे पूछ लिया करना मैं बहुत साफ आदमी हूँ। समझे?"

भुवन सब कुछ समझता हुआ भी अनजान हो रहा था। उसे क्या पता था कि बी० ए० पास करने के बाद उसे एक गुण्डा के यहाँ शरण मिलेगी—और सभ्यता की डिग्री लेकर भी वह सभ्यों की महफिल से बहिष्कृत रहेगा। आज तो गुण्डा ही उसके लिये सब-कुछ था, जिसने बिना जान-पहचान के ही शरण दे दी। और एक हैं वे लोग जो भाई होकर, एक खून के होकर भी अनजान बनते हैं, जान के ग्राहक बन जाते हैं।

रामू की आकृति में कुछ दोष था—भंगिमा का दोष और वही उसके चरित्र को भयावह बना देता। उसके दाहिने गाल पर, ठीक बीच में नहीं बल्कि जरा-सा ऊपर किसी घातक शस्त्र से कट जाने का चिह्न था। जब वह भवों को सिकोड़कर कोई दिलचस्प और खतरनाक बातें करता तो उसके दाँत अपने-आप बैठ जाते और गाल पर चिपका हुआ कटा निशान उभर आता।

भुवन कभी-कभी उसकी ओर छिपी निगाह से देख लेता और फिर

मानसिक तरंगों में ऊबने-चूभने लगता। गाड़ी सरसराती हुई चली जा रही थी। डब्बे से काफी लोग उतर चुके थे और बचे हुए मुसाफिर करीब-करीब सो रहे थे। कभी ऊँघते-ऊँघते अगर कोई किसी की देह पर गिर पड़ता तो दूसरा मुँह बनाता हुआ ऊँघने वाले व्यक्ति को धकेल देता और स्वयं किसी की देह पर लुढ़क जाता। भुवन देखता रहा। वह चिन्ता की लहरों में स्वयं धक्के खा रहा था लेकिन सोने और ऊँघने वालों की यह हरकत देखकर उसे कुछ हँसी आ जाती और सोचने लगता—हर आदमी अपनी सहूलियत देखता है हर आदमी अपने को दुरुस्त समझता है, हर आदमी दूसरों की कमजोरी पर झल्ला उठता है और स्वयं डूब जाता है, उसी जिन्दगी में, उसी लहजे से उसी कमजोरी में... ।

"क्या सोच रहे हो?" रामू ने मुस्कराते हुए पूछा।

भुवन ने सर घुमाकर देखा, वह बीड़ी सुलगा रहा है। एक कश खींचते हुए रामू ने अपने प्रश्न की याद दिलाई, "ऐं"।

"कुछ नहीं।" भुवन ने संक्षेप में ही उत्तर देकर टाल देना चाहा।

"देखो, यह जो हमारे साथ दो और साथी हैं न, बहुत ईमानदार आदमी हैं। इनकी ईमानदारी का सदुपयोग नहीं हो पाता। फिर भी इनकी बातों पर विशेष ध्यान मत देना। मैं नहीं चाहता कि तुम हम लोगों की राह के राही बनो। हाँ, साथी जरूर बनाना चाहता हूँ और बनाऊँगा। मैंने सोच लिया है—तुम्हें बनारस में कोई काम दिलवा दूँगा। पढ़े-लिखे आदमी हो, समय कट जायगा।...तुम्हारी शादी हो चुकी है?"

"नहीं।"

"बहुत ठीक, तब तो मेरे साथ भी रह सकते हो और अगर तकलीफ होगी तो फिर देखा जायेगा। लेकिन सुनता हूँ—पढ़े-लिखे दिमाग के तो तगड़े होते हैं लेकिन दिल उनका कच्चा होता है। खैर, कोई बात नहीं।"

रामू की बीड़ी बुझ गई थी। वह फिर से उसे सुलगाने लगा। पानी का बरसना बन्द हो चुका था। गाड़ी अपनी रफ्तार में बढ़ी जा रही थी। रामू ने गाड़ी की खिड़की गिरा दी। आकाश पर रोशनी का संकेत पड़ चुका था। भुवन ने एक लम्बी साँस ली—"एक रात तो कट गई।"

: ३ :

भुवन को बनारस आये आज एक हफ़्ता गुज़र गया। आज शनिवार है। कल से आठवाँ दिन चलेगा। वह रामू के साथ ही टिका हुआ है। और जगह भी कहाँ थी? जिस मकान में वह टिका है, उसे मकान कहना या ठहरने का स्थान करार देना मकान की खिल्ली उड़ाना होगा। यों है तो ईंट, चूना और सीमेण्ट का ही बना हुआ, लेकिन झोंपड़ी इससे कहीं अच्छी रहती। यह मुहल्ला ही जानवरों का है। यहाँ गौशालाएं हैं, कबूतरखाने हैं, पैखाने हैं, रिक्शेवालों की खोहें हैं, और शहर के तमाम ठेले वालों का आरामगाह भी यहीं है। यहाँ जानवर ही रहते हैं जो शरीर की कमाई खाते हैं। जानवर मर्द—जानवर औरत। जानवर औरत? चूँकि दालमण्डी भी इसी के आगे है। और पिछवाड़े की तरफ़ यह मुहल्ला पड़ता है। रामू का मकान भी बिल्कुल खोह ही है—न किसी तरफ से हवा के आने की गुंजायश और न धूप की। दो मंजिल के इस छोटे से मकान में चार कोठरियाँ—दो ऊपर और दो नीचे। नीचे की कोठरियों में लकड़ी के टूटे हुए बक्से, खाट और रसोईघर! आँगन ऐसा कि म्युनिसपैलिटी का तमाम कूड़ा-करकट जैसे वहीं इकट्ठा हो गया हो। दीवार की हालत ऐसी कि तमाम चूना झड़ गया था और ऐसी लग रही थी जैसे कोढ़ फूट गया हो और सुर्खी उधड़े हुए लाल गोश्त की तरह बीभत्स रूप में चिपकी हुई लटक रही हो। अजीब रोमांचकारी और तिलस्मी मकान था।

भुवन को एक कमरा दे दिया गया था। बगल वाले कमरे में रात-भर बीड़ी, ताश, शराब और जुए की दौर चलती, कहकहे लगते। दिन के दस

बजे तक खर्राटे सुनाई पड़ते। धीरे-धीरे भुवन इस वातावरण का आदी होता जा रहा था। वहाँ दिन-रात शोरगुल होता, गाली-गलौच होती, ठहाके लगते और शराब की दौर के बाद कभी-कभी रोने का बीभत्स चीत्कार भी सुनाई पड़ता। इस मकान को रामू अड्डा कहता।

अभी रात के आठ बज रहे होंगे। अड्डा में कोई नहीं था भुवन के सिवाय। क्योंकि भुवन बाहर बहुत कम निकलता। अड्डा में बिल्कुल शान्ति जमी हुई थी। कभी एकाध चूहे या छुछून्दर इस ओर से उस ओर निकल भागते तो भुवन की विचार-धारा टूट जाती कुछ देर के लिये। फिर वह सोचने लगता, आखिर कब तक? क्या तमाम ज़िन्दगी यों ही समाप्त हो जायेगी? वह यों ही पड़ा-पड़ा सड़ जायेगा—मिट जायेगा और दुनिया उसके सामने ज्यों-की-त्यों चलती चली जायेगी? लेकिन वह इस तरह नहीं मर सकता। वह शोर करेगा, गाली देगा। चूँकि कोई उससे काम नहीं लेता, कोई उसकी कीमत नहीं आँकता, कोई उस पर तरस तक नहीं खाता...और रामू? बेचारा रामू, यों ही अपने जीवन के शेष भाग लुटाता चला जा रहा है। कितना सच्चा है वह! कितनी दिलेरी है उसमें! लेकिन व्यर्थ! क्योंकि कोई उपयोगिता नहीं। वह शराब पीता है, जुआ खेलता है, बुरी-बुरी औरतों के पास जाता है और सीना तानकर चलता है। क्यों? क्या वह इसी तरह की ज़िन्दगी को खूबसूरत और अच्छी समझता है? क्या मैं भी ऐसी ज़िन्दगी को खूबसूरत और अच्छी समझता हूँ? इस गन्दी, जहरीली, खतरनाक और मरी हुई ज़िन्दगी की लाश को कौन अच्छा समझेगा? लेकिन रामू को यही भाती है। रामू के साथियों को यही पसन्द है। इसलिये नहीं कि वे ऐसा ही चाहते हैं, बल्कि इसलिये कि वे मजबूर हैं। भुवन को याद आया—रामू ने एक बार कहा था—'हमारे साथी ईमानदार हैं लेकिन इनकी ईमानदारी का सदुपयोग नहीं हो पाता।....' सदुपयोग और ईमानदारी—भुवन इन दो विरोधी गुणों की तुलना कर-करके अपने-आप हँसने लगा।

उसकी इच्छा हुई—वह ठहाका मारकर हँसे। लेकिन कोई सुन लेगा तो? नहीं-नहीं, वह नहीं हँसेगा। ऐसा तो पागल किया करते हैं। वह पागल तो नहीं हो गया है? भुवन को अपने-आप पर शक होने लगा। उसने अपने दोनों हाथों से चेहरे को टटोला और सर दाबकर कुछ देर बैठा रहा। फिर बालों को उँगलियों में लिपटा-लिपटाकर जोर से खीचने लगा। अचानक उसकी हँसी न जाने कहाँ चली गई। वह सोचने लगा—अगर उसकी माँ यहाँ आ जाती और उसे इस हालत में देखती तो....भुवन की आँखों में आँसू आये।

नीचे रामू की आवाज सुनायी पड़ी। वह सँभलकर खड़ा होगया। रामू ने आते ही भुवन को देखा और समझ गया कि आज भुवन उदास है, बहुत उदास है। उसे सचमुच भुवन से स्नेह हो गया था। कुछ देर तक यों ही रामू उसके निकट खड़ा रहा। भुवन ने एक बार रामू को देखा, वह मलमल के कुर्ते की जेब में दोनों हाथ डाले, खड़ा-खड़ा मुस्करा रहा था। भुवन फिर सामने दीवार की ओर देखने लगा। उसकी इच्छा हो रही थी कि रामू कुछ पूछे तो वह उसके कलेजे से चिपक जाये और कह दे, रामू देवता है, रामू इन्सान से भी ऊपर है। रामू ने बीड़ी निकाली और सुलगाता हुआ बोला—

"क्या दिन-रात सोचते रहते हो? बाहर घूम-फिर क्यों नहीं आते? कल से गंगा के किनारे चले जाया करो। मल्लाह कुछ पैसे ले लेगा और नाव की सैर करा दिया करेगा। यों तो तबियत ही खराब हो जायगी। कल से घूम आया करना। समझे?"

"भुवन भइया तो यों ही मर जायेगा बैठा-बैठा" मदन ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा। मदन की उम्र लगभग छत्तीस-सैंतीस की होगी और वह रामू का दाहिना हाथ समझा जाता। दुबला-पतला, गौर वर्ण का लम्बा नौजवान, छटी हुई मूछें रखता। सर पर छोटे-छोटे बाल जैसे वह सभ्य बनने

की कोशिश में हो। होंठ बराबर पान से शराबोर रहते। उसकी आँखों में खून की लाली नहीं थी बल्कि दूध की-सी सज्जनता थी। फिर भी मदन गुण्डा था। भुवन को यह बहुत भाता।

मरण शब्द से रामू को बहुत नफ़रत थी। वह मदन पर आँखें लाल करता हुआ बिगड़ा—

क्या "बकवास करते हो? नामर्द।"

"मैं नामर्द हूँ? नामर्द तो तुम हो जो दूसरे को भी नामर्द बना रहे हो।" मदन ने उलझते हुए कहा। भुवन ने देखा—मदन ठीक एक बच्चे की तरह रामू पर झल्ला रहा है। रामू ने मदन से चुप रहने को कहा। लेकिन वह क्या चुप रहता? वह बोलता ही रहा—

"बेचारा भुवन भइया दिन-रात यों ही पड़ा रहता है। तुम्हें तो इतनी भी चिन्ता नहीं कि जरा इसे घुमा-फिरा लायें। जिम्मेदारी तो सबकी ले लेते हो लेकिन निबाहने के नाम पर झल्ला उठते हो।"

"तो इसमें मैं क्या करूँ?" रामू की आवाज़ में स्नेहमय रोष था। मदन ने मौका अच्छा देखा उसने भी जरा आजिज़ी से कहा—

"बिचारा बैठ-बैठा ऊब जाता होगा। एक तो योंही विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है और अगर किसी चीज़ में उलझा नहीं रहा तो...ऐसी हालत में लोग पागल तक हो जाते हैं।"

"नहीं-नहीं मैं बिल्कुल ठीक हूँ।" भुवन ने आभार से झेंपते हुए कहा। वह सोच रहा था कि काश मुझे रामू की सेवा करने का मौका मिलता। अगर रामू बीमार होजाय और उसके सभी साथी साथ छोड़ दें तो वह दिन-रात खाना-पीना भूलकर सेवा में जुटा रहेगा और तब...छीः छीः वह कितना नीच है! अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए दूसरों की बुराई सोचता है...रामू ने कुछ सोचते हुए कहा—

"देखो, दो-तीन रोज में अगर तुम्हें कोई काम नहीं मिला तो फिर

और इन्तजाम करूँगा। अभी तैयार हो जाओ, एक जगह चलना है समझे?"

और इतना कहकर रामू दूसरे कमरे में चला गया। मदन ने भुवन की आँखों से आँखें मिलाते हुए कहा—

"आज तुम्हें पता चलेगा कि जिन्दगी क्या होती है?" और इतना कहकर वह अर्थपूर्ण हँसी हँसता कमरे के बाहर होगया।

भुवन फिर अकेला रहगया। उसकी जिज्ञासा सीमा पार कर रही थी। वह समझ नहीं पा रहा था कि उसे किस जगह चलना है। रामू कहाँ ले जायेगा? क्या...नहीं, नहीं, वह मुझे खतरनाक जगहों पर कभी नहीं ले जा सकता। वह मेरा भला चाहता है। लेकिन अभी तो मैं सोच रहा था कि....कोई सेवा का मौका मिले। ठीक तो, अगर रामू के लिए हत्या भी करनी पड़े तो मैं....नहीं नहीं, अच्छाई के नाम पर बुरा काम नहीं कर सकता।....भुवन हाँ और नहीं में उलझा रहा। सुलझने के बजाय और भी उलझता गया—और भी उलझता गया। बगल के कमरे में ठहाके-पर-ठहाके लग रहे थे। शराब चल रही थी बड़ी तेजी से, और कभी-कभी गिलास और बोतल धक्के खा जाते, आपस में टकरा उठते और रामू बिगड़ उठता, "ढालनी भी नहीं आती, मूर्ख।"

"भाई ढालनी तो आती है लेकिन सीधे कंठ में। यह गिलास-विलास का मामला ठीक नहीं।" जवाब मिलता और इसी पर ठहाके पड़ते। रामू डाँट देता।

भुवन ने तय किया कि रामू जहाँ भी चलने को कहेगा, वह बेहिचक के जायगा। जरूर जायगा, भले वह बुरा-से-बुरा काम हो लेकिन रामू का साथ तो दे सकेगा कम-से-कम। वह तैयार होकर बैठ गया।

: ४ :

सब-के-सब एक गली से गुज़र रहे थे, जो गली कभी तो सामने आ जाती और कभी ओझल हो जाती, मुड़ जाती। रात अधिक बीत चुकी थी। गली की बगल के सभी मकान दो मंजिले थे। चित्रा सिनेमा के पीछे से ये लोग निकले थे और उसके बाद बाएँ मुड़कर दाहिने मुड़ गए थे। फिर तो गली खुद ही लुकती-छिपती, मुड़ती-मचलती अपने-आप लिये चली जा रही थी। सब-के-सब खामोश थे। कभी-कभी मदन कह उठता—"एकाध बोतल शराब ले लेनी चाहिये थी गुरू।" कि रामू बिगड़ उठता—"चुप रहो।"

कहीं-कहीं गली के किनारे कुछ कुत्ते अपने दोनों चंगुलों पर मुँह रखे सो रहे थे—निश्चिन्त, निर्द्वन्द, निर्लिप्त। और जब रामू का दल करीब पहुँचता तो सर उठाकर एक बार देख लेते और फिर सो जाते।

भुवन को यह समझते देर नहीं लगी कि वह बाईजी की गली से होकर गुजर रहा है। कहीं-कहीं से सुरीली आवाज़ आती, 'का करूँ सजनी, आये न...!'...और भुवन को लगता कि यहाँ ज़िन्दगी बसती है लेकिन अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए, लोलुप और गाँठ के पूरे रईसों के मनोरंजन के लिए।...

"ठहरो! तुम लोग यहीं ठहरो, मैं ज़रा ऊपर से देख आऊँ कि लक्खी फ़ुर्सत में है या महफिल में।" इतना कहकर रामू ऊपर चला गया।

भुवन पसीने-पसीने हो रहा था। डर से नहीं, जिज्ञासा से कि यहाँ क्या होता है। हालाँकि उसने बहुत से उपन्यास पढ़े थे जिनमें वेश्याओं

का ज़िक्र आया था। अभी हाल ही में तो उसने 'तीन वर्ष' खत्म किया था, जिसका नायक एक वेश्या के यहाँ जाता है—उससे मुहब्बत करता है। हालाँकि अपनी मुहब्बत वह अच्छी तरह प्रकट नहीं करता क्योंकि वहाँ वह 'आदर्श वेश्यागामी' होकर जाता है। लेकिन अभागी वेश्या उसे चाहती है—दिल से चाहती है और मरने के बाद अपनी सारी दौलत उस नायक को दे जाती है। भुवन इसीतरह की निराधार कल्पनाओं की बातें सोचता रहा जिसे लेखक अपनी उड़ान समझते हैं। यह नहीं सोचते कि यथार्थ को भावना और कल्पना से अलग नहीं किया जा सकता। इतनी आसानी से ज़िन्दगी का सबसे बड़ा मसला—भूख का मसला—हल नहीं होता। अगर मुहब्बत के नाम पर कोई पागल आत्महत्या कर लेता है तो भूख के नाम पर हज़ारों आदमी तड़प-तड़पकर जीते हैं। लाश की तरह जीते है जिन्हें दफ़नाने के समय कफ़न की भी ज़रूरत नहीं होती, क्योंकि भूखों पर माँस का सौन्दर्य नहीं रहता, इसलिए उन्हें ढकने की आवश्यकता नहीं पड़ती। और भूख का मसला आदमी के मस्तिष्क को झकझोरता है, हृदय को मार डालता है, कल्पना परी की पाँखें नोच डालता है और उस समय उस आदमी के दिल की मुहब्बत, इन्सानियत और तर्क सभी खत्म हो जाते हैं।...

भुवन आज बेकार है और वह वेश्या के यहाँ आया है। उसे अपने-आप पर आश्चर्य हो रहा था—अपने-आपसे घृणा हो रही थी और वह मन-ही-मन झल्ला रहा था। रामू को विश्वास था कि भुवन को कोई-न-कोई काम अवश्य मिल जायगा और इसी उम्मीद पर वह उसे सहारा दिये हुए है। यह रामू की नीचता नहीं बल्कि उदारता है कि वह सहारा तो दे रहा है। रामू जानता है कि भुवन पढ़ा-लिखा खूबसूरत जवान है, विपत्ति का मारा है लेकिन बराबर ही यह बेकार नहीं रह सकता, इसलिए भुवन भार नहीं बन रहा था।

जब रामू अपने साथियों के साथ ऊपर पहुँचा तो भुवन ने देखा सफ़ेद

फ़र्श पर दीवाल से सटे मसनद के सहारे एक सज्जन विराजमान हैं। रामू को दरवाजे पर देखते ही सज्जन महोदय ज़रा उचकते हुए फूट पड़े—

"अक्लाह, आप हैं—रामू सरदार! आइये-आइये! लो भाई लक्खी, सँभालो अपनी रियासत। मैं तो चला।" सज्जन ज़रा मुँह ऊपर करके गल-गलाते हुए बोल रहे थे, क्योंकि पान से उनका मुँह गीला हो रहा था। भुवन ने ग़ौर किया— कोई पुलिस अफ़सर है। घूमी हुई चाबुक के छोर की तरह मूँछें बनाये। उसके सभी अंगों पर माँस का बँटवारा बहुत उदारता से हुआ था। पचपन चेहरे में दो छोटी-छोटी पैनी चमकती हुई आँखें उल्लू की आँखों-सी लग रही थीं। शायद किसी ज़माने में बेचारे चेचक के बुरी तरह शिकार हुए थे, जिसका बेरहम निशान अभी तक उनके चेहरे पर शिलालेख की तरह खुदा हुआ था। उनकी नाक का अगला भाग जरूरत से कुछ अधिक गोल था। आप शहर कोतवाल थे, अपने गाँव की बोली में दारोगा जी।

रामू ने ज़रा बनाते हुए कहा—

"ऐसी क्या बात है? हम लोग आये नहीं कि आप चलने को तैयार होगये। अरे बैठिये भी। आप तो यों ही छटे-छमाहे दर्शन देते हैं और बातें भी नहीं होतीं कि झोला-तमंचा उठा लेते हैं।"

सब-के-सब ठहाका मारकर हँसने लगे। भुवन मन-ही-मन काँप रहा था—अपने में हीन भाव महसूस कर रहा था। लेकिन प्रतिष्ठा के ख्याल से वह जमकर बैठने की कोशिश करता और कभी-कभी अपने अस्वाभाविक उपक्रम पर अपने-आप झेंप जाता। दारोगाजी तिरछी निगाह से भुवन को देखते हुए रामू के कान के पास अपना मुँह ले जाकर बोले—

"यह नई चिड़िया कहाँ से फँसा लाये हो गुरू?"

रामू को यह बात बहुत बुरी लगी, लेकिन यह क्रोध दिखाने का समय नहीं था। उसने दाँत पीसते हुए कहा—

"जल्लाद के घर से।" रामू के गाल पर का कटा चिह्न उभर आया

। भुवन ने उन दोनों को फुसफुसाते देखा लेकिन कुछ सुन नहीं सका।
की भंगिमा अवश्य देखी और वह सहम गया। मूर्ख दारोगा क्या बातें
रहा है? जानवर! और सभी लोग चुपचाप बैठे थे और मन-ही-मन
ढ़ रहे थे कि कहाँ से यह मनहूस आ टपका। सबको गुस्सा आ रहा था।
ोगाजी मुस्करा रहे थे। रामू ने ज़रा ऊँची आवाज़ में पूछा—"लक्खी
ाँ है?"

एक दुबली-पतली बुढ़िया ने कमरे में आकर रामू को बड़े नखरे से
दाब किया और बताया कि लक्खी अभी आती है।

भुवन के सामने दीवार पर एक खूबसूरत तरुणी की अर्धनग्न तस्वीर
क रही थी। उस तस्वीर में तरुणी, पपीहे के मुँह की तरह आँखें
ए, क्षितिज की ओर देख रही थी। भाल पर एक बिन्दी, दो चोटियाँ
दन के आगे चिपकी हुई अंग्रेजीनुमा ब्लाउज—जो छातियों को ढकने
बजाय उभारने में ज्यादा मदद कर रही थी और कानों में इयररिंग जो
ीर की तरुणी के रंग में घुलो-मिली जाती थीं। और इन सभी उपकरणों
जी-सजी तरुणी भुवन को अच्छी लगी। क्या यही लक्खी है? कोई
हो, और उसकी नजर और-और जगह घूमने लगी। और भी कितनी ही
ीरें—औरतों की ही, दीवार पर टँगी थी। एक लम्बे-चौड़े फ्रेम वाले
शे के नीचे बहुत से जवानों और अधेड़ों की छोटी-छोटी तस्वीरें सटी
। शायद यह सब इनके चाहने वाले होंगे। लेकिन ग़ौर से देखने पर भी
की तस्वीर नहीं दिखाई पड़ी। भुवन मुस्कराने लगा—शायद चाहने
ों में तस्वीर बढ़ाने वाले यह सज्जन लोग हैं। कोठरी के बीच में छत से
; खूबसूरत भारी-भरकम झाड़ लटक रहा था, जिसके बाद ही बिजली का
ा तेज़ी से नाच रहा था। नीचे फ़र्श पर कोने में एक जोड़ा तबला
। था और दीवार से दो सारंगियाँ लटक रही थीं जो पूछने का मौका
ं देना चाह रही थीं कि यह किसका मकान है। चारों ओर नजर दौड़ा

लेने के बाद भुवन की नजर फिर पहली वाली तस्वीर पर आ जमी। वह यों ही उस तस्वीर को घूरता रहा। बातचीत करते-करते रामू ने छिपी नजर से भुवन की यह करतूत देखी, और बगल में बैठे मदन की जाँघ को चुटकी से मसल दिया। भुवन का मस्तिष्क एकदम खाली था। वह कुछ सोचना नहीं चाहता बल्कि सब-कुछ भूल जाना चाहता था। तो क्या भूलने का एक यही शुगल हो सकता है। नहीं–नहीं–नहीं—वह कुछ नहीं सोचेगा—कुछ नहीं बोलेगा—केवल देखेगा और बस। और वह फिर उसी तस्वीर को देखने लगा। "आदाब बजा लाती हूँ।"...एक सुरीली मुलायम आवाज कमरे में दौड़ पड़ी।

"तुमने तो इन्तजार का पुल बनवाना ही शुरू कर दिया।" रामू ने आँखें उठाते हुए कहा। ठहाका से समूचा कमरा गूँज गया। कहाँ वह सुरीली और मुलायम आवाज कहाँ यह शुष्क अट्टहास। भुवन ने जो आँखें घुमाकर देखा तो सन्न-सा रह गया। वह आकर सामने ही, दोनों ठेहुनों को मोड़कर साड़ी झलकाती हुई बैठ गई। पंखे की हवा के अलावा साड़ी के फलकाने से हवा का एक हल्का झोंका आया जिस पर एक भीनी-भीनी अजीब मादक-सी खुशबू डोल रही थी। भुवन ने महसूस किया, उसकी नसें में एक अजीब-सा कम्पन हो आता है जो उसके लिए बिल्कुल नया है। यही लक्खी बाई थी—हूबहू तस्वीर से मिलती-जुलती, छरहरी, गोरी, भरी हुई देह, पतले सूखे हुए होंट, साफ़ बड़ी-बड़ी आँखें, छोटे-छोटे तने उफ़ने उरोजों पर से गुजरती हुई कमर तक लटकी हुई दो चोटियाँ, उम्र लगभग अठारह साल की, लक्खी बाई भुवन के आगे बैठी हुई थी।

भुवन ने सोचा क्या यह भी नारी है? माँ की तरह—भाभी की तरह?...नहीं वह माँ से शान्ति पाता था और भाभी के पास अशान्ति लेकिन अभी दोनों के बीच का भाव महसूस कर रहा है। भुवन इस जीती जागती तस्वीर को देखकर कुछ चाहने लगा है पर पता नहीं वह क्या चाहने

लगा है। लेकिन उसके भीतर कोई चीज बहुत वेग से दौड़ रही है—बहुत वेग से जिसे वह देख नहीं पाता, पकड़ नहीं पाता और समझ भी नहीं पाता कि क्या है। लेकिन यह भी नारी ही है जो स्फूर्ति देती है, प्रेरणा देती है, जलन देती है। भुवन सोच रहा था वह क्यों आया यहाँ? रामू ने उसे धोखा दिया है। वह उसे नरक में गिराना चाहता है। वह उसे जला देना चाहता है—खाक कर देना चाहता है। नहीं, वह अब कभी नहीं आयेगा। यहाँ वह गरीब है, बेकार है, निराधार है और पढ़ा-लिखा भी है। लेकिन गुलाम—दूसरे के सिर का जंजाल। उसे डूब मरना चाहिए...रामू ने देखा भुवन के चेहरे पर रेखाएँ दौड़ रही हैं। उसने लक्खी की ओर देखकर कुछ इशारा किया और कहा—

"क्यों लक्खी, कुछ सुनाओगी नहीं?"

"आखिर यह गुलाम है किसलिए, क्यों दारोगाजी, आप कहाँ चले?" दारोगा जी उठने का उपक्रम कर रहे थे, उन्होंने कुर्ते का बटन ठीक करते हुए कहा—

"अजी मैं तो योंही घूमने-फिरने चला आया। अब चलता हूँ।" दारोगाजी जूता पहनने लग गए थे।

"क्या यहाँ कोई रहने भी आता है दारोगाजी?" रामू ने अपनी मूँछें चढ़ाते हुए कहा।

"कहने-भर के लिए तो आ ही जाता है। अच्छा, नमस्कार सबको।" और एक व्यंग्यपूर्ण दृष्टि डालते हुए दारोगाजी टहलते नजर आए। रामू ने एक जोर का ठहाका लगाया। साथ ही मदन और अन्य साथी भी हँस पड़े। भुवन खामोश था। "आज तो नाचना भी होगा लक्खी।" और भुवन की ओर रामू ने इशारा किया।

उम्र तो कोई खास नहीं थी लक्खी की लेकिन पूर्णतया चेतन थी और दक्ष भी। अपनी सुन्दरता, नजाकत, संगीत और जबान पर अगर उसे गर्व

नहीं था तो कम-से-कम विश्वास जरूर था। उसने भुवन की ओर सरकते हुए कहा—

"हाय-हाय, मैं भी कैसी बदतमीज हूँ। एक नये मेहमान आये और हमने नाम तक नहीं पूछा।"

"आप मेरे दिली दोस्त भुवन बाबू हैं। हम लोगों के बीच यही एक पढ़े-लिखे हैं, जिन पर हम सबको फ़क्र है।" रामू ने जरा जल्दबाजी से काम लिया।

भुवन कहीं दूसरी ओर घूम रहा था। उसकी नजर तो लुक-छिपकर लक्खी को देख लिया करती लेकिन मन कहीं और था। वह इसी उधेड़-बुन में पड़ा था कि लक्खी सबको मुहब्बत के भाव से ही देखती है। फिर भी रंगीनी, मुलायमियत और सुगन्ध से भरी यह सजीव पुतली क्या विश्वसनीय है ? क्या इसे नारी कहा जा सकता है ? लक्खी ने अलग से ही पूछा—

"क्या सुनना पसन्द करेंगे आप ?"

भुवन तो काठ होगया। उस बेचारे को क्या पता कि क्या-क्या सुना जाता है। रामू ने जान बचा ली। वह बीच ही में बोल उठा—

"अरे लक्खी बाई, कहा न कि आज नाचना भी है और गाना भी। एक तो आप इन्तजारी में ही एक घण्टा बैठाये रहीं और उस पर भी इतने नखरे।"

"आप भी कोरे अनजान ही बनते हैं। देखा नहीं—मुआ दारोगा आकर जमा था। मुहब्बत की बातें करता है। कहता है—मैं तुमसे शादी करूँगा। हरामी। लक्खी मुँह बना-बनाकर बोल रही थी और सब-के-सब उसकी मादक भंगिमा में डूब रहे थे। लेकिन रामू थोड़ा गम्भीर होगया। समाजी आ गए थे। लक्खी ने उन लोगों को कुछ बताया और आप घुँघरू बाँधने लगी। भुवन स्वयं ही डूब—उतरा रहा था। दारोगा का जिक्र आते ही रामू की आँखों में कुछ अधिक खून उतर आया है और उसके गाल पर

का कटा चिह्न भी उभर आया है इसे मदन और भुवन के सिवाय और किसी ने भी नहीं देखा। नाच आरम्भ होगया।

बीच-बीच में सब-के-सब वाह-वाह करते और रामू भी, लेकिन भुवन चुप था। वह कुछ जोर से चिल्लाना चाहता, फिर भी खामोश था। लक्खी की कमर डोलती—जैसे लहरों के थपेड़ों पर नाव डोलती है। पैर ताल पर पड़ते, छूम छुन छुन....छुनन छुमछुम...और भुवन डूब जाता उसी लय में उसी डोलती लहरों में लय हो जाना चाहता। संगीत और सौन्दर्य, जीवन और जीव, प्राण और शरीर, सत्य और स्वप्न सब का जैसे लक्खी के नृत्य में ही समागम हो रहा था। लक्खी जितनी ही सुन्दर थी, उसका स्वर भी उतना ही मधुर था। मुर्दा महफ़िल में भी जान डाल देने में वह मशहूर थी।

भुवन कहीं दूर देश में पहुँच रहा था, जहाँ और कोई नहीं केवल लक्खी थी—केवल लक्खी ही। वह स्वयं भी अपने को नहीं देख पा रहा था। कितना मुग्ध था वह, जैसे उसे सब-कुछ मिल गया। और सचमुच बच ही क्या रहा। संगीत, सौन्दर्य, आनन्द और जीवन सभी कुछ मिल गया। भुवन ने जैसे जीवन का राज पा लिया। वह आनन्द से पागल हो जाना चाहता। चाहता कि वह लक्खी को अपने अंकों में कस ले। अपनी भुजाओं से वह लक्खी के अंग-प्रत्यंग को मसल डाले—पीस डाले कि वह उसी में समाहित होजाय, लय होजाय। वह अभागा है जो ऐसा नहीं कर पा रहा है। अभागा...हाँ वह सचमुच अभागा है। तभी तो घर छूटा, भाई छूटे, माँ मर गई और पढ़-लिखकर भी वह बेकार बैठा है, रामू के जुए पर मुयस्सर है। लेकिन उसके पास मस्तिष्क है, मस्तिष्क में कई योजनाएं हैं, हृदय है—हृदय मे कई रंगीन कल्पनाएँ हैं, स्वस्थ शरीर है—शरीर में काम करने की क्षमता है, फिर भी वह मुयस्सर है। किसी का मोहताज है। और वह मुहब्बत करने चला है। लक्खी से मुहब्बत करने चला है, जिसे दारोगा चाहता है, रामू चाहता है और मेरे जैसा अभागा—एक नादान

पागल भी चाहता है। नहीं...नहीं।वह यहाँ नहीं टिक सकता। वह कभी नहीं टिक सकता।

सबने विस्फारित आँखों से देखा कि भुवन अचानक ही उठकर चला गया। रामू ने पूछना चाहा लेकिन तब तक भुवन सीढ़ी उतर चुका था। सब लोग एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे। रामू सर नीचा किये कुछ सोच रहा था—सोचता रहा।

फिर नाच या गीत कुछ भी नहीं जमा।

: ५ :

भुवन को बनारस आये आज पन्द्रह दिन गुज़र गये, फिर भी उसे कोई काम नहीं मिला। उसने कई दरवाजे खटखटाये और कई जगह तो फटकार खाते-खाते बचा। लक्ष्मी वाली घटना के बाद वह और भी उदास रहने लगा। उसे अपनी कमजोरी पर, अपनी योग्यता पर, अपनी असमर्थता पर गुस्सा आता—झल्लाहट होती और अपने बाल आप नोचकर भी सन्तोष नहीं पाता। भुवन महसूस करता कि वह समाज का भार है और इसलिए उसे कहीं भी सफलता नहीं मिलती...नहीं मिलेगी। उसके पास एक पैसा भी नहीं है। रामू के सर बैठ-बैठकर खाता है लेकिन कब तक? उसे पढ़ने की तबियत होती, घूमने की भावना उभरती, लेकिन वह पैसे लावे तो कहाँ से? रामू का अब और अधिक आभार लेना बुरा ही नहीं, बेवानियत होगा। बल्कि उससे भी बदतर। नहीं, अब वह कहीं चला जायगा—कहीं चला जायगा—जहाँ उसकी किसी आदमी से भेंट न हो सके। कुत्ते की जिन्दगी बिताने से मर जाना कहीं बेहतर है। वह मरेगा चूँकि जीवित रहने का उसे कोई अधिकार नहीं। वह समाज का भार है, कोढ़ है, इसलिए उसे खत्म हो जाना चाहिये।

दिन-भर भुवन अड्डा पर बैठा-बैठा अजीब विचारों में उलझा रहा और जब बहुत अनमना होगया तो दशाश्वमेध घाट पर चला आया। शाम हो गई थी। वह वहीं एक सीढ़ी पर बैठ गया। सामने गंगा की धारा बह रही थी। पानी बरस जाने से गंगा का पानी कुछ गंदला हो रहा था फिर भी उसमें एक स्वच्छता थी। भुवन देखता रहा। वह सोचने लगा...गंगा

कितनी दूर से आ रही है लेकिन इसमें कोई झुँझलाहट नहीं, कोई अधीरता नहीं, कोई थकान नहीं। यों तो इस साल वर्षा कुछ कम नहीं हुई है, क्योंकि भुवन ने बनारस आते वक्त गाड़ी से ही कितनी नदियों को लड़ती-झगड़ती और उफनती-झुँझलाती हुई जाते देखा था। लेकिन गंगा के बहाव में कोई विशेष परिवर्तन नहीं। दूर-दूर पर, बीच धारा में, छोटी-बड़ी नावें आ-जा रही थीं। गंगा के उस पार, पेड़ों की छत पर अंधकार उतर रहा था, फैल रहा था। ऊपर आसमान बिल्कुल साफ। चारों ओर खामोशी। बाईं तरफ कुछ दूर पर माधवदास का धरहरा बड़ी शान से गहरे आकाश को छू रहा था। उसे देखकर भुवन को लगा कि मनुष्य अगर विशाल नहीं तो उसकी कीर्ति अवश्य विशाल है। धीमी-धीमी हवा चल रही थी। उसे वहाँ थोड़ा आराम मिल रहा था, थोड़ी शान्ति मिल रही थी। घाट पर बहुत से लोग स्नान भी कर रहे थे लेकिन इससे खामोशी में कोई बाधा नहीं पड़ रही थी। स्नान करने वालों का मंत्रोच्चारण और दूर से विश्वनाथ जी के मन्दिर से आती हुई घण्टा-ध्वनि उस ख़ामोश वातावरण में एक अजीब बेचैनी पैदा कर रही थी। भुवन अपनी विचारधाराओं में डूबा रहा। रात होने को आई कि उसने देखा, दूर पर कोई नौजवान उसी की ओर टहलता हुआ चला आ रहा है।

भुवन यों ही उस नौजवान की ओर देखने लगा चूँकि वह वहाँ की सभी चीजों को देख रहा था। जब नौजवान कुछ करीब पहुँचा तो भुवन को लगा वह उसे पहचानता है। नौजवान अपनी रफ्तार में चला आ रहा था। जब वह कुछ और क़रीब आया तो भुवन ने गौर से देखना शुरू किया, सफ़ेद पेजामा, सफेद कुर्ता, आँखों पर काले फ्रेम का चश्मा और हाथ में एक छाता लिये उसका जाना-पहचाना पशुपति ही चला आ रहा है। पशुपति का ध्यान भुवन की ओर नहीं था। भुवन अचानक ही उछल पड़ा—"अरे मोहन!" पशुपति के घर का नाम मोहन ही था।

मोहन ने अकचकाकर जो देखा तो सामने भुवन खड़ा था। भुवन और मोहन में खूब पटती थी। दोनों साथ ही पढ़ते थे। लेकिन सन्'४२ के आन्दोलन में भुवन के दो साल खराब चले गये थे। इसलिये मोहन ने दो साल पहले ही बी० ए० पास कर लिया था। फिर भी दोनों के बीच कोई भेद नहीं आया। एक साथ होस्टल में रहना, एक साथ मेस जाना, एक साथ कालेज जाना और एक ही साथ टहलना भी। होस्टल के विद्यार्थी उन दोनों को यों घुले-मिले देखकर आवाज़ें कसते, मजाक उड़ाते लेकिन इसका भुवन और मोहन पर कोई असर नहीं।

भुवन ने पहली बार एक होटल में मोहन को देखा था। वहीं से इनकी जान-पहचान शुरू हुई। मोहन साधारण कोटि का युवक था—गोरा, नीली-नीली आँखें औरत की तरह, खूबसूरत, सवा पाँच फ़ीट का लम्बा और गठा शरीर। लेकिन उसके चेहरे से सादगी और सच्चाई टपकती जो साधारण कोटि के लोगों में कम पाई जाती है। और सच पूछिये तो मोहन की सच्चाई, सादगी और भोलेपन ने ही भुवन को आकर्षित किया। यह तब की बात है जब दोनों फर्स्ट ईयर में पढ़ते थे।

एक बार भुवन को दर्जी के यहाँ से मोहन की कमीज़ लानी पड़ी। जब मोहन ने पैसे देने चाहे तो भुवन को बुरा लगा। और उसी रोज़ से भुवन चाहता कि वह मोहन के लिये और खर्च करे, सब-कुछ खर्च कर दे। उस समय दोनों दो कमरों में रहते। भुवन दिन-रात मोहन के कमरे में ही रहने लगा। उसकी तबीयत होती वह बराबर वहीं, मोहन के पास ही रहे। एक बचपना थी जो भुवन को कचोटती, गुदगुदाती, उकसाती कि वह मोहन को प्यार करे, केवल वही प्यार करे, और कभी-कभी दोनों अजीब-अजीब बातें करते; बातें करते-करते उलझ पड़ते, झगड़ पड़ते, लिपट जाते और सिसक-सिसककर रोने लगते। अजीब हालत थी, अजीब जमाना था—बेफ़िक्र। अगर भुवन कभी देख लेता कि मोहन किसी और के साथ टहलने

गया है तो वह गुर्रा उठता। वह नहीं चाहता कि मोहन किसी और के साथ टहले। कई रोज तक दोनों एक-दूसरे से बोलना छोड़ देते, चिढ़े रहते, उदास रहते, जिन्दगी से ऊब जाते, डायरी लिखते, भुवन कविताएँ लिखता, कहानी लिखता। फिर चिट्ठी-पत्री चलती और तब दोनों लिपटकर खूब रोते।

आज पूरे दो साल के बाद दोनों की भेंट हुई है, अचानक, अनजाने, गंगा-किनारे अपने प्रान्त से दूर बनारस में, जहाँ भुवन फटेहाल है, बेकार है। अगर वे पिछले दिन होते तो दोनों लिपट जाते, रोने लगते लेकिन अब दोनों काफ़ी बड़े हो गये हैं। दोनों के बीच दो साल की चुप्पी आ गई है, योग्यता की बू आ गई है, उम्र की लाज आ गई है और ज़िन्दगी का यथार्थ आ गया है।...दोनों एक-दूसरे को कुछ देर तक देखते रहे खोये-खोये से। मोहन ने चुप्पी भग करते हुए पूछा—

"यहाँ कैसे आये ? क्या घूमने-फिरने आये हो ?"

"हाँ, घूमने-फिरने ही आया हूँ लेकिन जीवन व्यतीत करने के खयाल से, मन-बहलाव के खयाल से नहीं।" भुवन ने जबरदस्ती हँसते हुए कहा। मोहन ने देखा, भुवन की आँखों में विषाद झाँक रहा है, फिर भी वह हँसने का प्रयास कर रहा है। वह कुछ समझ नहीं पाया। उसने भवें सिकोड़ते हुए पूछा—

"क्या मतलब ?

"मतलब बाद में बताऊँगा, पहले बैठो तो सही।"

"नहीं, यहाँ नहीं, चलो किसी रेस्तराँ में चलें।"

दोनों पुराने मित्र सीढ़ी चढ़ने लगे। दोनों खामोश थे। जब बाज़ार आगया तो मोहन ने एक रिक्शा से बचते हुए पूछ दिया—

"कब आये यहाँ ?"

"पन्द्रह दिन होगए।" भुवन ने विषादमयी मुस्कान के साथ कहा। मोहन ने भुवन का चेहरा नहीं देखा और 'हूँ' के सिवाय कुछ कहा भी नहीं।

दोनों चुपचाप चलते रहे, जैसे दोनों एक-दूसरे की स्थिति समझ गये हों। दोनों के चेहरे पर विषाद की छाप थी, आनन्द का संकेत था और दोनों ही खामोश थे।

"आओ इसी रेस्तराँ में चलें।" संगम रेस्तराँ की ओर इशारा करते हुए मोहन ने कहा। आर्डर देकर दोनों बातचीत में लग गये। मोहन करीब-करीब चुप ही था। भुवन दाहिने हाथ की उँगली से टेबुल क्लौथ खरोंचता अपनी कहानी कहता रहा...कह गया। मोहन को रंज था कि वह उसके पास क्यों नहीं आया। लेकिन भुवन उसका पता भी तो नहीं जानता था। उसे क्या पता था कि उसका दिली दोस्त यहीं एक दैनिक हिन्दी-पत्र में सहायक सम्पादक है और अगर जानता भी तो क्या भुवन उसके पास जाता? शायद नहीं।

चाय-पानी की समाप्ति पर मोहन ने भुवन को अपने डेरे पर चलने के लिये कहा लेकिन रामू बुरा मानता इसलिये कल दफ़्तर में ही मिलने का वायदा कर भुवन अपने मित्र से अलग हुआ।

आज वह खुश था। बहुत खुश था। शायद अब उसे कोई काम भी मिल जाये। तब वह लिखेगा, खूब लिखेगा। उसकी रचनाएँ अखबारों में प्रकाशित होंगी। पुराने साहित्यिक उसकी रचनायें पढ़ेंगे और अपने भाषण के सिलसिले में उनका उल्लेख करेंगे। आलोचक उसकी कहानियों का विश्लेषण करेंगे। बहुत से अर्थ लगायेंगे, जो अर्थ उसके दिमाग में कभी आया भी नहीं होगा। और तब वह साहित्य को बदलने का दावा करेगा, समाज को बदलने की कोशिश करेगा। चारों ओर उसके नाम का बादल छा जायेगा। लोग उसके दर्शन को प्यासे पपीहे की तरह व्याकुल रहेंगे, और तब उसके भाइयों के कान तक यह बात पहुँचेगी...उसके भाइयों तक? नहीं, वह भाइयों से मिलेगा भी नहीं। वह अपनी दुनिया आप बनायेगा जिस दुनिया का वही राजा होगा। राजा...और...और क्या वह अकेला

रहेगा। नहीं, उसे किसी के सहारे की जरूरत पड़ेगी। बड़े-बड़े लोग उसके साथ अपनी लड़की ब्याहना चाहेंगे लेकिन वह सबों को मुँहतोड़ जवाब देगा। हुँ हुँ....विपत्ति के दिन कोई पूछने भी नहीं आता। नहीं, वह किसी भी बड़े आदमी से अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ेगा। वह रामू पर एक उपन्यास लिखेगा और संसार में तहलका मचा देगा। और वह मुहब्बत के नाम पर किसी गरीब लड़की से...गरीब लड़की से जो असहाय होगी, तिरस्कृत होगी। और लक्खी...! लक्खी का ध्यान आते ही भुवन की आँखें चमक उठी। उसके अंग-प्रत्यंग में गरम लहू दौड़ गया। लक्खी जो खूबसूरत है, तिरस्कृत है, गँवार है, लेकिन तमीजदार है। लक्खी—जिसकी मुलायम, सुरीली और मादक आवाज से ही वह मदहोश हो जाता है। ठीक है—वह लक्खी से ही ब्याह करेगा। साहित्य के साथ ही समाज में भी क्रान्ति की आवश्यकता है। उस रोज किस तरह प्रेममयी आँखों से वह मुझे देख रही थी और जब मैं अपनी आँखें नीची कर लेता तो वह भी ज़रा मुस्करा देती। लेकिन...लेकिन वह तो सबके साथ वैसा ही व्यवहार करती होगी।...

घूमते-घूमते भुवन लक्खी बाई के कोठे के नीचे पहुँच चुका था। बगल की गली में, जहाँ से सीढ़ी ऊपर को जाती थी, बिल्कुल अँधेरा था। अचानक अपने को दालमण्डी में पाकर वह घबरा-सा गया। लेकिन आज वह खुश था। अब वह जीना चाहता था—कुछ करना चाहता था। भुवन अपने को रोक नहीं सका और शीघ्रता से सीढ़ी पर दाखिल होगया। दालमण्डी के कोठे पर जाने की राह प्रायः सड़क पर ही खुलती है। कोठे पर जाने वालों के लिए यह दरवाजा लक्ष्मण-रेख से कम महत्त्व नहीं रखता। निकलने वाले दरवाजे पर आकर शीघ्रता से उचक जाते हैं और सड़क की भीड़ में शामिल हो जाते हैं जिससे कि कोई देख न ले और दस क़दम चलने के बाद कहीं सर उठाते हैं—सीना तानते हैं। और कोठे पर जाने वालों की भी यही हालत होती है। वे भी उचककर जल्दी से दरवाजे के भीतर दाखिल हो

जाते हैं। फिर तो अँधेरा-ही-अँधेरा रहता है। और ऊपर जहाँ रईसों की महफ़िल लगती है, प्रकाश से आँखें चौंधिया जाती हैं, जैसे मकान-भर का प्रकाश बटोरकर उस एक कमरे में इकट्ठा कर दिया गया हो। बाईजी का आँगन तो उगालदान ही होता है, जहाँ पान की पीक, बीड़ी और सिगरेट के टुकड़े, पेशाब की गन्दी-बहती धारा और पत्तों के दोने दिखाई पड़ते हैं।

भुवन जब ऊपर पहुँचा तो लक्खी बैठी हुई अपनी बूढ़ी अम्मां से कुछ बातें कर रही थी और साथ ही चिनिया बादाम भी फोड़-फोड़कर खाती जा रही थी। भुवन को देखते ही लक्खी उछल पड़ी।

"आइए हुज़ूर, आप तो उस रोज़ ऐसे भागे जैसे मौक़ा देखकर क़ैदी भाग खड़ा होता है।"

भुवन अभिमान बाँधकर आया था। सीढ़ी पर चढ़ते समय ही उसने तय कर लिया था कि आज वह भी रामू और मदन की तरह बदन झुला-झुलाकर दाद देगा, आँखें भँजा-भँजाकर बातें करेगा और सब-कुछ कह देगा। वह बी० ए० है—एक औरत से शर्मायेगा क्यों? लेकिन कूचे में पैर रखते ही यार का होश हवा होगया। उसने झेंपते हुए कहा—

"उस रोज़?...उस रोज़ तबीयत ख़राब हो गई थी।"

"और लोगों की तबीयत ख़राब होती है तो जाने का नाम नहीं लेते और आप हैं कि धड़ से ग़ायब होगए।" लक्खी ने तिरछी निगाह फेंकते हुए कहा। उसकी अम्मां भीतर चली गई थी। भुवन की आँखें और नीची होगईं। लक्खी एकटक भुवन को देख रही थी। कभी-कभी दोनों की आँखें टकरा जातीं, भुवन हार बैठता। बेचारा दाव-पर-दाव मात खा रहा था। लक्खी ने एक लम्बी साँस खींचते हुए पूछा—

"आप शर्माते बहुत हैं। पान खाइएगा?"

"जी नहीं, मैं पान-वान नहीं खाता।"

"लेकिन आज तो खाना ही पड़ेगा।" लक्खी ने मुस्कराते हुए एक

शरारत-भरी दृष्टि भुवन पर डाली। पलकों के किनारों पर लक्खी की दोनों आँखें उतरा रही थीं। पाउडर से पुते चेहरे पर भी कड़वापन की रेखा उभर आई थी। भुवन सहम गया। उसने बातचीत वहीं खत्म कर देने के ख्याल से कहा—

"जैसी आपकी मर्ज़ी।"

लक्खी वहीं बैठी-बैठी पनबट्टे से पान बनाने लगी और कभी-कभी एकाध नज़र भुवन पर भी फेंक देती।

भुवन की हालत अजीब थी। कहाँ तो वह तरह-तरह की तस्वीरें बना रहा था और कहाँ अब आकर्षण विकर्षण, मुहब्बत-नफ़रत और आनन्द तथा ऊब के डोले में झूलता हुआ अपने को स्थिर नहीं पा रहा था। क्या उठकर चल दे? लक्खी गज़ल की एक पंक्ति गुनगुना रही थी।

कभी तो वह लक्खी की उँगलियों को देखता और कभी गीत सुनता हुआ मानसिक द्वन्द्वों में उलझ जाता। कितनी कोमल हैं इसकी उँगलियाँ और स्वर?...आह! इसे वेश्या क्यों बनाया गया? काश, यह किसी की संगिनी होती। लेकिन...जिन्दगी गीत गाने के लिये तो है नहीं। वहाँ तो चलना होता है, सहना होता है, मरना होता है। यह बेचारी इतनी कोमल, इतनी रंगीन क्या जीवन के चढ़ाव-उतार पर ठहर सकेगी? लक्खी ने पान लगा लिया था और दोनों उँगलियों के बीच दो बीड़े पान दाबकर उसने भुवन की ओर बढ़ाया। पान लेते समय भुवन की उँगलियाँ लक्खी की उँगलियों से छू गईं। भुवन की कनपटी झनझना उठी। लगा उसकी नाभि से मस्तिष्क तक सनसनाती हुई कोई चीज़ गुज़र गई। पान गिरते-गिरते बचा। लक्खी मुस्करा पड़ी। उसने पूछा—

"कुछ सुनाऊँ?"

"नहीं।" भुवन की आवाज़ में दृढ़ता थी। उसने महसूस किया वह गिर रहा है। उसे लड़ना है, आगे बढ़ना है। इस तरह वह कमज़ोरी का

शिकार नहीं बनेगा। नहीं, कभी नहीं। वह अचानक ही उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा चलता हूँ। नमस्कार।"

लड़की मुँह बाये देख रही थी—देखती रह गई। "अजीब पागल है" और वह मुँह बिचकाती हुई किंचित् हँस पड़ी। नीचे पान वाले की घड़ी ग्यारह बार गनगना उठी।

: ६ :

भुवन को दैनिक पत्र में काम करते लगभग सात महीने गुजर गए। इस बीच कई घटनाएँ घटीं। आजकल वह मोहन के साथ ही रहता है, खुशी और लगन से भरा हुआ वह तरह-तरह की योजनाएँ बनाता है। कल्पना में ही कई तरह की बाधाएँ आती हैं और वह फिर नए सिरे से विचार करता है—संशोधन पेश करता है और जब सर चकराने लगता है तो आँखें बन्दकर लेट जाता है, फिर प्रतिक्रिया होती है, नफ़रत होती है। वह सोचता है—यशस्वी लेखक बनना अच्छा होगा। लेकिन उसे याद आती है उन विद्वानों की दशा जिनसे वह हाल में ही मिला है और जो बच्चों के कपड़े तक नहीं जुटा पाते। फिर वह नेता बनना चाहता है लेकिन वहाँ तो बहुत-कुछ देना होगा और तब उसे निरालाजी की पंक्ति याद आती है—"कांग्रेस में शामिल होने के लिए बहुत-कुछ देना पड़ता है जो मैं नहीं दे सकता। मैं क्या कोई भी स्वाभिमानी नहीं दे सकता।" और भुवन का दिमाग थक जाता—नफ़रत से भर जाता। नफ़रत, अपने से नफ़रत, दुनिया से नफ़रत, जिन्दगी से नफ़रत—मतलब यह कि वह समूची व्यवस्था को ही ग़लत और गन्दा समझने लगता, वहाँ योग्यता की प्रतिष्ठा नहीं।

इन्हीं चन्द महीनों में भुवन का नाम साहित्य-क्षेत्र में फैल चुका है। उपसम्पादक की क़लम में इतनी ताक़त। कुछ मुग्ध हैं, कुछ परेशान हैं लेकिन सब टकटकी बाँधे हैं कि देखें आगे क्या होता है।

तो भुवन अपनी विचारधारा में डूबा ही था कि मोहन आ पहुँचा। भुवन की आँखें बन्द थीं। मोहन ने अपनी कमर पर हाथ रखते हुए कहा—

"अजी दार्शनिक महाराज, ध्यान तोड़िए।" भुवन को जैसे उसका आना मालूम था। उसने धीरे से पलकें उठाते हुए कहा—

"प्रेस से आगये ?"

"वह तो देख ही रहे हो। लेकिन तुम रामू से मिलने नहीं गये ?"

"यूँ ही बैठा रह गया। आज जरा तबीयत ठीक नहीं है। कल जाऊँगा।"

मोहन ने देखा, आज भुवन उदास है। इधर कुछ दिनों से भुवन की जिन्दगी मजे में चल रही थी हालाँकि कभी-कभी वह झुँझला उठता, कहीं भाग जाना चाहता। मोहन जानता है कि भुवन चिन्तनशील है, भावुक है और साथ ही बहुत बड़ा हठी भी। भुवन जो-कुछ भी सोचता है या करता है, करने देना चाहिए, अन्यथा वह बुरा मान जायगा, कुछ आफ़त कर डालेगा। इसलिए जब कभी भुवन इस तरह की बातें चलाता जिसमें दुःख, कुढ़न, घृणा और प्रतिहिंसा की भावना होती, तो मोहन चुप ही रहता या कुछ बेतरतीब जवाब दे देता। उसने यों ही छेड़ने के ख्याल से कहा—

"इधर लक्खी के यहाँ मुहब्बत खरीदने नहीं गये ?"

"सम्भ्रान्त परिवार में तो मुहब्बत खरीदने पर भी नहीं मिलती।" भुवन ने व्यंग-मिश्रित हँसी के साथ उत्तर दिया। मोहन कुछ मर्यादावादी युवक था जो आदर्श के नाम पर गन्दगी को खत्म करने की जगह ढँक देना अच्छा समझता। क्योंकि उससे बदबू या नग्नता फैलने का डर जाता रहता है। उसने जोर देते हुए कहा—

"सम्भ्रान्त परिवार में तो मुहब्बत इज्जत समझी जाती है। इसलिए वहाँ खरीद-फ़रोख्त की कोई गुँजाइश ही नहीं है।" भुवन जैसे चिढ़-सा गया। उसने जरा कड़ेपन से कहा—

"तो क्या तुम समझते हो कि लक्खी या उसके-जैसी अन्य वेश्याओं के यहाँ रिक्शा चलाने वाले, खान खोदने वाले, खेत जोतने वाले या मिल में

काम करने वाले कुली और मजदूर जाते हैं ?" भुवन ने महसूस किया कि उसकी आवाज कुछ ऊँची हो गई है। वह अपने पर नियन्त्रण रखने की कोशिश करता हुआ बोलता गया—"भीख माँगने वाले कुत्ते मुहब्बत से नफ़रत करते है। उन्हें रोटी चाहिए।"

"मैं यह कब कहता हूँ कि अच्छे लोग वेश्यागामी नहीं होते, लेकिन उनके घर में मुहब्बत पर व्यभिचार नहीं होता।" मोहन ने हकलाते हुए कहा।

"वहाँ मुहब्बत का गला घोंट दिया जाता है व्यभिचार के नाम पर, स्वार्थ के नाम पर। और वेश्याओं के यहाँ मुहब्बत ढाली जाती है सम्भ्रान्त परिवार के व्यभिचार को रोकने के लिए, कोमल कमाई के अपव्यय के लिए।" भुवन को अपना घर याद आ रहा था, अपनी भाभी याद आ रही थी, अपना खेत दिखाई दे रहा था और...और वह उन्मादी की तरह करने लग गया, मोहन उसकी भंगिमा से ही ताड़ गया। उसने बात बदलने के ख्याल से कहा—"अरे एक बात कहना तो भूल ही गया। सम्पादकजी के पास कई चिट्ठियाँ आई हैं जिनमें तुम्हारी कहानी के लिए बधाइयाँ भेजी गई हैं। एक पत्र तुम्हारे नाम से भी था। मैं लेता आया हूँ।" मोहन ने पत्र बढ़ा दिया।

भुवन की मानसिक स्थिति अच्छी नहीं थी, फिर भी जिज्ञासा से वह पत्र पढ़ने लगा। मोहन एकटक भुवन के चेहरे पर बनती-बिगड़ती रेखाओं को देख रहा था। अन्त में उसने पूछा ही दिया—"किसका पत्र है ?"

"स्वयं पढ़ लो—किसी सम्भ्रान्त परिवार की कुमारी जी हैं। लिखती हैं—आपकी कहानी पढ़कर मैं मुग्ध हो गई हूँ। और जानते हो, ऐसी तीन-चार चिट्ठियाँ और भी आ चुकी हैं।" मोहन ने पत्र पढ़ा जिसमें कोई मालती थी जो कहानी पर तो मुग्ध थी ही, कहानीकार पर भी लट्टू हो रही थी और डोरी की फरियाद की गई थी जिससे कि बेचारी जिन्दगी पर नाचती रह सके।

मोहन ने मुस्कराते हुए कहा—

"तो इसमें रंज होने की क्या बात है! अरे, यह सूखी-सूखी टूँट की जिन्दगी कब तक बिताओगे? भेज दो एक डोरी।"

"मशीन-युग मे डोरी की क्या जरूरत! यह तो खरीद-फ़रोख्त हो-गया।" भुवन ने व्यंग कसते हुए कहा और अपने-आप ठहाका मारकर हँसने लगा। मोहन ने देखा उसकी हँसी में भी आज एक अजीब भयंकरता है। वह दिन-रात परेशान रहता कि किस तरह भुवन को ठीक राह पर ला सके, उसकी जिन्दगी में शान्ति की धारा बहा सके। लेकिन समस्या को जब कभी भी वह सुलझाने बैठता—बात उलझती ही दिखाई देती और तब वह डर जाता, खामोश हो जाता।

अचानक ही भुवन ने मौन भंग करते हुए गम्भीर स्वर में कहा—

"मोहन मैं यहाँ मर जाऊँगा। मुझे कहीं बाहर चला जाना चाहिए।" मोहन मुँह बाये देख रहा था। भुवन ने उसे बताया कि यहाँ उसका शोषण हो रहा है। लोगों की वाहवाही एक भ्रम है। एक जहर जो धीरे-धीरे उसकी रगों में घुसता जा रहा है। उसे बहुत ग्लानि होती है। मोहन उसे समझाना नहीं चाहता लेकिन वह जानता है कि यहाँ से जाने के बाद उसकी मनोदशा और बिगड़ जायगी। उसने मन टटोलने के विचार से पूछा—

"लेकिन तुम्हारी प्रतिष्ठा तो है ही यहाँ।"

भुवन झल्ला उठा। वह केवल प्रतिष्ठा का भूखा नहीं। वह कुछ करना चाहता है। उसके हृदय में लगन और अन्वेषण की भूख है जो यहाँ मरती जा रही है। वह उपसम्पादक है और जिन्दगी भर उपसम्पादक ही रह जायगा। वह मेहनत करता है लेकिन उसे शान्ति नहीं मिलती, क्योंकि चन्द वाहवाही के टुकड़े और गिनती-भर रुपयों से उसका काम नहीं चलता। यह जो प्रधान सम्पादक है आलस्य का पुतला—कितनी बातें बनाता है! खून सुखाकर काम करने वाले उपसम्पादकों को कोई जानता भी नहीं लेकिन

यह प्रधान सम्पादक अजगर की तरह सब-कुछ निगल जाता है—मान, श्रेय, यश और पुरस्कार। और वह भी उपसम्पादक ही तो है और जिन्दगी-भर यही बना भी रहेगा। उपसम्पादक। एक साहित्यिक कुली, विशाल प्रचार यन्त्र का एक पुर्जा, बड़े-बड़े महान् नेताओं की तरक्की पर एक बलिदानी। उपसम्पादक !! भुवन जलभुन गया। उसने सोचा, महसूस किया कि एक एलसीसियस कुत्ता उससे कहीं अच्छा है जिससे मालिक भी डरता है कि कहीं दाँत न गड़ा दे। लेकिन भुवन पचहत्तर रुपल्लियों पर सभी-कुछ बेच देने वाला—एक साहित्यिक, एक नौजवान, एक प्रतिभाशाली मांस-पिंड।

मोहन ने उसे उदास होकर देखा। लेकिन उसकी उदासी में दुःख की तीव्रता उतनी अधिक नहीं थी जितनी कि दया की। मोहन उसका मित्र था। विद्यार्थी-जीवन में कोई स्पर्धा नहीं थी, कोई स्वार्थ नहीं था। लेकिन बनारस आने पर जब भुवन का यश फैलने लगा तो मोहन मन-ही-मन सोचता—वह इतने दिनों से बनारस में रहकर भाड़ ही झोंकता रह गया और भुवन ने आते ही बाज़ी मार ली।...तो क्या हुआ! उसी का तो मित्र है। और अपने को सान्त्वना देने के खयाल से अपने-आप पर हँस देता। फिर भी उसके मन में, मनके भीतर कहीं कोने में, स्पर्धा जनम चुकी थी जिसे मित्रता की भावना ने ढँक रखा था। लेकिन आज जब भुवन बनारस छोड़ने के लिए तैयार है तो उसे चिन्ता होती है, दुःख नहीं होता। वह भुवन का शुभचिन्तक है इसलिए उसके भविष्य के लिए चिन्तित है साथ ही भुवन उसका प्रिय प्रतिद्वन्द्वी है इसलिए दुख की गहनता नहीं। उसने भुवन से अनुरोध किया कि पहले वह बम्बई या किसी अन्य शहर में जगह ठीक कर ले फिर यहाँ का काम छोड़े। और भुवन कुछ दिनों के लिए और रुक गया।

: ७ :

भुवन अजीब पागल की तरह करता है। कभी तो रात-रात-भर गंगा-किनारे बैठा रह जाता है और कभी गलियों का चक्कर काटता है। लिखने बैठता है तो लिखता ही रह जाता है। उसकी आलोचनाएँ शंकर की तीसरी आँख-सी होतीं जो सभी कीर्तियों को जलाकर राख कर देना चाहतीं। वह महसूस करता कि इन साहित्यिकों में कोई जान नहीं है कोई मौलिकता नहीं है, कोई उद्देश्य नहीं है और इनके सामने कोई राह भी नहीं है। पुरानी लाश का पोस्टमार्टम प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक ताजमहलों के शिलालेख पर एक नया अन्वेषण, एक नई उक्ति, बस यही है आज का काव्य। आज के कवि जीवन से दूर कल्पना की गोद में सो जाना चाहते हैं—सो जाना चाहते हैं। भुवन महसूस करता कि यह साहित्यिक अगर जीवन की कठिनाइयों पर गौर करें, कला की वास्तविकता पहचानें तो कुछ सम्भव भी हो। यों तो चोरी करना भी कला है, बहस करना भी कला है, भाषण देना भी कला है और इसी ढंग पर लिखना भी कला है। और इसीलिए आज के साहित्यिक लिखते हैं चूँकि लिखने में दक्ष हैं, नाम कमाने में दक्ष हैं, चौर्य-कला में निपुण हैं।...भुवन में प्रतिहिंसा की भावना काम कर रही थी, उसकी प्रतिभा को राह नहीं मिल रही थी, उसकी आत्मा का विकास नहीं हो पा रहा था और वह विकल था, वह घुट रहा था, पागल हो रहा था—उन्मादी—वह कला की व्याख्या करना चाहता पर कर नहीं पाता। कभी तो सोचता, कला जीवन-शक्ति है जो मिट्टी में भी प्राण फूँक दे, जीवन-शक्ति जो पेड़-पौधों में भी आत्मा बिठला दे—एक निजत्व स्थापित कर दे। लेकिन

नहीं, इससे तो कलाकार अधूरा ही रह जायेगा उसे कोई पहचान भी नहीं पायेगा। कला सार्वभौम एकता का प्रतीक है, एक चित्र है जिसमें जो-कुछ भी है वही है और कुछ नहीं। और उसमें पेड़ हैं, नदियों का कलरव है, समुद्र की गहराई है, आकाश की विशालता है, हिमालय की ऊँचाई है, शून्य की अमरता है, सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है और भूख की ज्वाला भी है। कला प्रकृति और मानव के दुराव को दूर कर देती है और साथ ही मानव-मानव के भेद को भी। लेकिन स्वार्थ और पशुता से मानव स्वयं भेद स्थापित कर बैठता है तो कला चीत्कार कर उठती है, फट पड़ती है और तभी भूचाल आता है जिससे दरारें पड़ जाती हैं और वे दरारें मानव के खून और मांस से ही पट पाती हैं।......

आज भुवन इसी तरह की बातें सोचता रहा था। उसका मन ऊब गया। वह खिड़की की राह बाहर आकाश को देखने लगा। दोपहर का समय था, आकाश में छिटपुट बादल टहल रहे थे। भुवन कुछ देर तक उन्हें देखता रहा जो खिड़की से ऊपर चले जाने पर छिप जाते और फिर दूसरा टुकड़ा आता, छोटा-सा सफ़ेद, नीले आसमान के नीचे धुनी हुई रूई के फाहे की तरह हल्का-फुल्का। कभी-कभी ठंडी हवा का एक झोंका आता और भुवन की आँखें भर आती।

भुवन बहुत देर तक वहाँ नहीं रह सका। उसे याद आया—आज उसके सहयोगी रमाकान्त ने बुलाया है। रमाकान्त, पच्चीस साल का यशस्वी नौजवान, दिल का भला और दिमाग़ का दुरुस्त। प्रायः रमाकान्त की ड्यूटी भुवन के साथ ही लगा करती। बनारस आने पर वह सामाजिक प्राणी नहीं बन सका क्योंकि अविश्वास और द्वन्द्व के झमेले ने उसे मायूस और एकाकी बना दिया था और अपना राज वह किसी से कहना भी नहीं चाहता। रामू और मोहन के सिवा कोई भी इस बात को नहीं जानता कि भुवन कहाँ से और क्यों आया। वह क्या है इसे कुछ लोग समझने की

कोशिश करते और उन लोगों का चिन्तन खिल्लियों में बदल जाता। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की जगह ग़लतफ़हमी और घृणा आ जाती। सोचने वाले हँसकर रह जाते। लेकिन रमाकान्त दिवालिया नहीं था। उसने जीवन का मर्म समझा था। उसके अपने सिद्धान्त थे, नपे-तुले, सन्तुलित। कभी-कभी दिल का पलड़ा झुकता तो स्वार्थ का एक बटखरा चढ़ाकर उसे ठीक कर देता—ज़रा अफ़सोस के साथ, घाटा का भाव महसूस करता हुआ। आज वह आठ वर्षों से पत्र में काम कर रहा है। हिन्दुस्तान के सभी कोनों में उसने जाल बुनने का प्रयत्न किया था। कहीं तो सफ़ाई होगई, कहीं एकाध ऐसा बच रहा और कहीं-कहीं का तो कोना ही ढह गया। हिन्दी पत्र की बिसात ही क्या, ठीक खबरों की ही तरह चमकी नहीं कि गायब! और इसीलिए रमाकान्त अनुभवी माना जाता। बातूनी भी कम नहीं। सभी उपसम्पादक जब अपना काम खत्म कर चुके होते और समय शेष रहता तो रमाकान्त का यात्रा-वर्णन आरम्भ होता जिसका कोई अन्त नहीं। धीरे-धीरे लोग खिसकना शुरू करते और रमाकान्त जी भी व्यस्त चेहरा बनाये, बालों को लटकाये, हाथ में छाता लिये चल पड़ते। कुछ भी हो, भुवन को रमाकान्त पसन्द आया वही एक है जो भुवन की इज्जत करता है, साथ ही सहानुभूति भी दिखला देता है कभी-कभी। भुवन एक तरह से आवारा ही था जिसने घर छोड़ दिया था। अब उसे ज़िन्दगी-भर घूमना ही है और घूमते-घूमते मर जाना है। रमाकान्त इसलिए भी पसन्द आया चूँकि वह घूम चुका था, घूम रहा था और इन दिनों बम्बई जाने की बात सोच रहा था। भुवन ने उसे बताया कि वह भी बम्बई जाना चाहता है। यहाँ उसकी तबीयत नहीं लगती।

धूप निकल आने पर भी बाहर कुछ-कुछ धूमिल वातावरण था। कुहरे की चादर हट चुकी थी लेकिन एकाध रेसे लटक रहे थे। ठंड भी काफ़ी थी। भुवन ने कुर्ते पर एक गरम चादर डाल ली और रमाकान्त के यहाँ

चल पड़ा । रमाकान्त शहर से दूर विश्वविद्यालय के क़रीब चितूपुर में रहत था । यों तो भुवन की जेब में काफ़ी पैसे थे लेकिन उसे टहलते हुए जान ही अच्छा लगा । अभी सड़क पर कोई खास भीड़ नहीं थी । यह बनार की मुख्य सड़क है जहाँ दिन को भीड़ नहीं के बराबर ही रहती है लेकि शाम होते ही, गहरे-बाजी, मलमल-बाजी, चादर-बाजी, चाट बाजी, नश बाजी और दुपट्टा बाजी शुरू हो जाती है 'फिर देखिए सड़कों और गलिय की रौनक । भुवन सोचता जाता यह विश्वनाथ की नगरी है जहाँ का पा मशहूर है, जहाँ की भंग मशहूर है, जहाँ की पीली पत्ती मशहूर है जहाँ के पण्डे मशहूर हैं, जहाँ के गुण्डे मशहूर हैं, जहाँ की जकीरन बाई रूपेश्वरी बाई और सिधेश्वरी बाई मशहूर हैं । यह बनारस है, हिन्दुओं व तीर्थ स्थान , पवित्र, पाक-साफ जहाँ विश्वनाथ जी के मन्दिर की बग़ल ही मस्जिद मुस्कराती है । यह बनारस है जहाँ कदम-कदम पर देवाल और बित्ते-बित्ते पर कटरे (Private Houses) और वेश्यालय ! पा और पुण्य का इतना बढ़िया सन्तुलन शायद ही कही देखने को अथवा सुन को मिले ।

रमाकान्त प्रतीक्षा में ही बैठा था । उसने भुवन को देखते ही शिकाय के स्वर मे पूछ दिया—

"कहाँ रह गये थे ? जानते नही हो, मैं समय का बहुत पाबन्द हूँ ।"

"माफ़ करना जरा भूल जाता हूँ । अचानक याद आया तो चल पड़ और देखो न पैदल ही आ रहा हूँ इतनी दूर से ।"

"क्यों, कोई सवारी नहीं मिली क्या ?"

"जरा टहलने की तबीयत होगई ।"

"ठीक है कोई बात नहीं, दिमाग के साथ-साथ शरीर को भी थोड़ कष्ट देना ही चाहिए ।" रमाकान्त ने टेबुल पर प्लेट रखते हुए कहा—आ भुवन का खाना भी यहीं बना था—भुवन ने एक सरसरी निगाह समूचे कम

पर डाली और समझ गया कि रमाकान्त किताबों का बहुत शौकीन है। दीवाल में ही तीन आलमारियाँ बनी हुई थीं—जिन में मोटी-मोटी बिना जिल्द की किताबें तरतीब से सजी थीं। एक बड़ी-सी टेबुल दरवाजे के दूसरे छोर पर, खिड़की के नीचे रखी हुई थी। जिस पर बेतरतीबी से साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ पड़ी हुई थीं। दो काठ की कुर्सियाँ भी, जो रमाकान्त जी की तरह ही अनुभवी मालूम पड़ रही थीं, टेबुल के पास पड़ी थीं। बेरुखी से, दीवाल पर एक होलडाल टँगा था, लपेटा हुआ तैयार कि कब जरूरत पड़ जाए। और वहीं पर कोकटी रंग के दो कुर्ते लटक रहे थे। रमाकान्त बातें बहुत करता, बातें भी ऐसी हुआ करतीं जिनसे साफ़ झलकता कि रमाकान्त जी में आत्म-विश्वास की कमी है। वह सबों को तीखी निगाह से देखते कि फ़लाँ मुझ पर हँस तो नहीं रहा है, फ़लाँ मुझे ओछा तो नहीं समझ रहा है। वह बराबर सतर्क रहते कि बातों में उन्हें कोई हरा न दे। उनका दावा था कि पत्र निकालने की योग्यता उनके सिवा और किसी में नहीं है। वह कहा करते कि आलोचना-साहित्य पर उनकी कलम से जो कुछ भी निकल जाए, बेजोड़ होता है। खुले शब्दों में वे कहा करते कि अगर उन्हें संसार का शासक बना दिया जाए तो तीन महीने में जानवर को भी आदमी बनादें। भुवन उनकी बातों को सुनता, कुछ बातों में सत्यता भी थी और कुछ बातें केवल अहंकार मात्र—हीन भावना की द्योतक। भुवन कभी-कभी मन ही मन झल्ला उठता कि क्या एक ही बात को दिन-रात दुहराता रहता है। लेकिन वह आकर्षित भी था। आकर्षित इसलिए था कि रमाकान्त-जी भावावेश में आकर अपनी कमजोरी तक कह डालते। आकर्षित इसलिए था चूँकि रमाकान्त की कलम में ताकत थी, मौलिकता थी, उम्मीद थी, लेकिन उसे कभी-कभी दुःख भी होता, क्योंकिर माकान्त अपनी प्रतिभा को गलत राह से लिए जा रहा है, अहंकार, शक और स्वार्थ के बाहुल्य के कारण।

खाना खाते-खाते भुवन ने पूछ दिया—"सुना बम्बई जा रहे हो ?"

"हाँ, लेकिन अभी कुछ दिन लगेंगे। क्योंकि जानते ही हो मैं अच्छी तरह नाप-तोलकर सौदा करता हूँ, और चाहिए भी। अगर ज़िन्दा रहना चाहते हो तो दो चीज़ों पर ध्यान रखो, पहला तो अपना स्वाभिमान और दूसरा इतमीनान।"...

"स्वाभिमान तो एक चीज़ हुई लेकिन इतमीनान क्या? इतमीनान ही होजाए तो ज़िन्दा रहने की जरूरत ही क्या है?" भुवन ने रमाकान्त की ज़बान पर लगाम लगाने के विचार से एक ब्रेक लगाई वरना उसका सम्भाषण खत्म ही नहीं होता, लेकिन वह मानने वाला नहीं था उसने हाथ चमकाते हुए कहा—

"भुवन बाबू, आप हैं कहाँ? अगर इतमीनान नहीं हो तो आप एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकते। अगर आपको इतमीनान ही नहीं होता कि रमाकान्त चितूपुर में है तो आप यहाँ आने की बात भी नहीं सोचते। जब तक मुझे इतमीनान नहीं होजाए कि बम्बई में खासे रुपये और अच्छी जगह मिल जाएगी तब तक जा कैसे सकता हूँ? जानते हो यह जो नेता सब हैं, पहले इतमीनान कर लेते हैं, तब कुर्बानी देते हैं। हर जगह यही चीज है, यही नियम है। यों तो कुत्ते दिन-रात ही भटका करते हैं लेकिन उन लोगों की ज़िन्दगी क्या है? मैं तुम से पूछता हूँ—कुछ नहीं प्यारे! पहले तोल लो अगर चीज़ हल्की हो तो बिना चीज के ही रहना अच्छा है।"...

"तुमने इधर कोई नई चीज लिखी है या नहीं?"—

भुवन ने बात बदलने के विचार से कहा।

"क्या लिखूँ? और क्यों लिखूँ? कहीं पूछ नहीं, अगर लिखूँ भी तो किस पर लिखूँ? कोई मौलिक रचना निकली भी है? सब बेकार, निराधार, प्राणहीन कोई सहानुभूति ही नहीं जगती, कि किसी पुस्तक पर आलोचना लिखूँ। देखो न आजकल जिसकी जो तबीयत आती है लिख

ारता है । न तो भाषा का ज्ञान है और न अलंकार का ।"...

"मैं भी कहीं चला जाना चाहता हूँ। यहाँ तबीयत लगती नहीं ।" ुवन ने व्यक्तिगत बातों से बहस का रुख बदलना चाहा ।

"क्यों ! कहाँ जाने का इरादा रखते हो ?"

"अभी तक कुछ तय नहीं किया है ।" भुवन की आवाज़ में पीड़ा थी।

"मैंने तो तुमसे अभी-अभी कहा है कि जब तक अगला क़दम मजबूत । कर लो पिछला क़दम उठाओ मत । वरना गलियों के चक्कर काटते नज़र प्राओगे । कोई पूछेगा भी नहीं । कहते-कहते रमाकान्त को हिचकी आने ागी ।" उसने पानी पीते हुए भी कुछ कहना चाहा लेकिन बीच ही में ुवन बोल उठा—"मैं भटकने से उतना नहीं डरता जितना कि बँध जाने से । ोचता हूँ बम्बई चल दूँ ।"

"अरे जब बम्बई ही जाना है तो दो-चार दिन रुक जाओ । साथ ही ालेंगे । देखो न एक पत्र तो बम्बई से आया है लेकिन वेतन बहुत कम है । ्सी हालत में सोचता हूँ, इन्कार कर दूँ । मँहगा सौदा मुझे पसन्द नहीं" माकान्त ने हरी मिर्च काटते हुए कहा । भुवन आधी बात तो सुनता और ाधी बात सुनकर भी समझ नहीं पाता । खोया-खोया खाता रहा । रमा- ान्त के लिए यह खामोशी खटकी । उसने ज़रा मुस्कराते हुए कहा—

"क्या सोच रहे हो ? किसी से आँखें तो नहीं उलझ गई हैं ? यहाँ ' जान छुड़ाकर भागना चाहते हो । हाँ भई, खूबसूरत आदमी हो, स्वाभा- ेक ही है । एक मैं हूँ कि कोई नवेली देखती भी नहीं ।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है । मैं सड़ना नहीं चाहता और अगर यहाँ हा तो घुट-घुटकर पागल हो जाऊँगा ।"

"तो ठीक है, इस ऑफ़र को मैं स्वीकार कर लेता हूँ । लेकिन तुम्हारा या होगा ?" भुवन रोटी चबाता हुआ बोला—"खैर कोई बात नहीं । हाँ चलने पर देखा जायेगा । "अरे, और कुछ नहीं तो खूबसूरत-सी शकल

पाई है, सिनेमा में ही दाखिल हो जाना। तो कब चलते हो।"

"जब तय करो।"—भुवन के चेहरे पर उल्लास दौड़ गया।

दोनों मित्रों में बात पक्की होगई कि अगले इतवार को चल देंगे। शाम तक दोनों मित्र वहीं जमे रहे। चित्तूपुर साफ़ मुहल्ला नहीं है। बनारस में जब कभी हैज़ा शुरू होता है तो यहीं से। प्लेग की जननी भी यही मुहल्ला है। सड़क पर जाड़े के दिनों में भी पानी जमा रहता है। बरसात की बात तो जाने दीजिये। रमाकान्त की कोठरी से हिन्दू विश्वविद्यालय की अट्टा-लिकायें साफ़ दीख पड़ती हैं। जब शाम होने को आई तो दोनों नगवा-घाट पहुँचे। बहुत-से विद्यार्थी यहाँ रोज शाम को टहलने आते हैं। लड़कियाँ भी यहाँ आती हैं और पचास प्रतिशत लड़के तो इसीलिए पीछे-पीछे चोटियों से बँधे चले आते हैं। भुवन इन उथले नौजवानों को देखता तो, थोड़ी-सी हँसी आती और साथ ही ग्लानि भी। जब रात अधिक होने लगी, तो भुवन ने निश्चय किया कि वह नाव से ही दशाश्वमेध घाट तक चला जायेगा।

धारा का बहाव अनुकूल ही था। इसलिए नाविक को कोई कठिनाई नहीं हो रही थी। बीच धारा में ठंड कुछ और अधिक थी लेकिन भुवन ने चादर का उपयोग नहीं किया। उसे आज की ठंड सुखदायिनी लग रही थी। चुपचाप नाव के एक छोर पर बैठा वह किनारों को देख रहा था—कभी बाईं तरफ कभी दाईं तरफ़। रामनगर महाराज का क़िला उसकी नज़रों से दूर होता जा रहा था लेकिन वहाँ की रोशनी पानी में दूर से भी दिखाई पड़ती। चारों तरफ़ अन्धकार। किनारों पर बिजली की जगमगाहट। अस्सी घाट गुज़रा और यहाँ खामोश पत्थर का छोटा-सा एक क़िला। दिन में वह एक बार यहाँ आ चुका था। यह वही स्थान है जहाँ 'महाकवि प्रसाद' के नायक बाबू नन्हकू सिंह गुण्डा ने अपनी जान दे दी थी। मुहब्बत की खामोश कुर्बानी का प्रतीक। पत्थर का खुरदुरा किला ताज-महल के समान ही मुहब्बत

का खामोश इतिहास। लेकिन ताजमहल ऐयाशी का स्वप्न है और यह है मुहब्बत पर कुर्बानी की तस्वीर, एक कठोर सत्य। फिर हरिश्चन्द्र घाट जहाँ एक सम्राट के धीरज की परीक्षा हुई थी...किनारे पर बिजली के जगमगाते बल्ब और बाईं ओर दूर आकाश में नाचती हुई ज्योतिकिरण जो एयरोड्रम के अस्तित्व का प्रतीक थी। सभी प्रतीक ही और गंगा भी, सृष्टि की गति का प्रतीक, लेकिन भुवन ?...

दशाश्वमेध घाट आ गया था वह आज भी उदास था क्योंकि यह शहर भी उसे छोड़ना पड़ेगा। यहाँ से वह ऊब गया था फिर भी छोड़ने पर दुःख हो रहा था—पीड़ा हो रही थी। इन्सान जहाँ भी रहता है, वहाँ के पत्थरों से भी प्यार करने लग जाता है। इन्सान मुहब्बत के बिना जिन्दा नहीं रह सकता। और इन्सान मुहब्बत करता नहीं बल्कि वह स्वयं ही प्रेम का पात्र है जिसमें जगह भी शरण ले लेती है, आदमी की बात तो दूर। भुवन को आज एक मोह हो रहा है ठीक उसी तरह का मोह जब वह घर छोड़ रहा था। अब वह यहाँ की गंगा को नहीं देखेगा। घरहरा को नहीं देखेगा, यहाँ की गलियों को नहीं देखेगा, गलियों को...दालमण्डी...लक्खी...और भुवन का हृदय भर आया। समूचे बनारस में लक्खी ही एक है जिसे वह प्यार करता है। लक्खी जो उसकी भूख है, जलन है, घृणा है। लक्खी जिसे देखकर वह थोड़ी शान्ति पाता है। बेचैनी से भरी शान्ति जिसमें तड़पन है, सिहरन है, कम्पन है और इसीलिए आनन्द है। पुरुष का अपना आनन्द, पूर्ति का आनन्द, एक अव्यक्त आनन्द। वह अपने को रोक नहीं सका और लक्खी के यहाँ चल पड़ा। अब तो वह शहर ही छोड़ रहा है एक बार चलकर देख ले, एक पाप और सही ! पाप ?...

वह दालमण्डी की ओर चल पड़ा। आज उसका हृदय जोरों से धड़क रहा था। रह-रहकर लक्खी की तस्वीर सामने आ जाती, हँसती-गाती, नाचती, उदास, चिनिया-बादाम खाती। और वह कई आदमियों से टक्कर

खा गया। उसे लगता वह लक्खी को सचमुच प्यार करता है, लेकिन वेश्या को प्यार करना वेश्यागामी होना है, अपने को बरबाद करना है। क्या बरबाद होता है वहाँ?...विश्वास, इज्जत, और रुपया? भुवन झल्ला उठा मन ही मन। विश्वास कहाँ है? और रुपया तो उसने एक भी नहीं दिया है आज तक लक्खी को। लेकिन आज वह बेचैन क्यों है? छोड़ने का मोह तो नहीं हो रहा है, लेकिन नहीं अब वह बनारस में टिक नहीं सकता। वह जरूर चल देगा। भुवन यही सब अनाप-सनाप सोचता लक्खी के कोटे के करीब पहुँच गया। दूर ही से उसने देखा वहाँ बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी है। दो-चार लाल पट्टी वाले भी खड़े हैं। भुवन कुछ सोच नहीं सका। जब क़रीब पहुँचा तो देखा दारोगाजी कुछ नोट कर रहे हैं। वह समझ नहीं पाया। जिज्ञासा से उसने एक आदमी से पूछा जिसने बताया कि खून हो गया है। खून? किसका? कैसे? कब? उसके मस्तिष्क में एक साथ ही कितने प्रश्न आगये, लेकिन वह कुछ पूछ नहीं सका। दारोग़ाजी से पूछने के ख़याल से वह भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ा। दारोग़ाजी की नज़र जो भुवन पर पड़ी तो उछल पड़े—

"अख्ख़ाह, आप हैं। आइए। आइए। आपका ही इन्तजार था।" दारोगा की आँखों में शैतानी चमक रही थी। उसने बग़ल में खड़े सिपाही को इशारा किया। भुवन कुछ समझ भी नहीं पाया कि दो सिपाहियों ने उसे पकड़कर हथकड़ी डाल दी। उसकी देह में आग लग गई, भूखे शेर की तरह वह गरज उठा—

"इसका क्या मतलब है?"

"मतलब तो जेल में मालूम होगा," दारोगा ने मुस्कराते हुए कहा। ले चलो इन्हें कोतवाली! देखना जरा होशियारी और अदब से, उनके दल के यह पढ़े लिए सदस्य हैं।"

भुवन कुछ समझ नहीं पाया। भीड़ की सैंकड़ों आँखें एकसाथ उसके

शरीर को छेद रही थीं। चारों ओर से आवाज़ आ रही थी—लगता है जैसे कितना शरीफ़ हो।"...अरे यही, उन लोगों का सरदार है,..."हिम्मत कैसी कि भीड़ में आकर खड़ा होगया,"...आदि तरह-तरह की बातें उसके कानों में जबरदस्ती घुस रही थीं। आवाज़ें गूँजती रहीं, वह कान भी नहीं बन्द कर सका, हाथ में हथकड़ी पड़ी थी वह चिल्ला-चिल्लाकर रोना चाह रहा था। लेकिन वह क्यों रोये? उसने अपने-आपको समझाया, वह बेक़सूर है, वह अब तक अपनी गिरफ़्तारी का कारण भी नहीं जान पाया है फिर वह क्यों रोये? उसने दुनिया की परवाह कभी नहीं की। फिर आज क्यों वह धैर्य खो रहा है? नहीं, वह शेर है जिसे धोखे से लोगों ने पकड़ लिया है, वह बेक़सूर है। आवाज़ों की गूँज धीरे-धीरे कम होती गई—कम होती गई।

वह हाजत में बन्द कर दिया गया।

: ८ :

दिन के लगभग ग्यारह बजे वह जेल के फाटक पर पहुँचा दिया गया। विशाल काय लौह-द्वार जिसे देखते ही क़ानून का अंजाम मालूम हो जाता है। क़ानून जो सभी देशों में शैतान के जबड़ों की तरह फैला है। क़ानून जिसका आधार ही विजित जाति के लोथों पर क़ायम है। क़ानून जिसका उद्देश्य सता का प्रदर्शन है। भुवन का रोआँ-रोआँ जल रहा था—नफ़रत से, क्रोध से, मजबूरी से! वह करे तो क्या? उसे सीखचों में बन्द किया जा रहा है। क़ानून का यही हुक्म है कि बेक़सूर को बन्द कर दो क्योंकि बेक़सूर नामर्द होता है, समाज का भार होता है, कुछ उत्पात नहीं करता कि सरकार को दो-दो हाथ दिखाने का मौका मिले। सरकार जो उत्पात रोकने के लिए उत्पात कराना चाहती है, और अगर उत्पात न हो तो बेक़सूरों पर ही टूट पड़ती है। नीत्शे के शब्दों में—'शक्तिशाली, शान्तिकाल में अपने-आप पर हमला कर बैठता है।' भुवन कल ही बम्बई जाने का स्वप्न देख रहा था। स्वप्न जो गुलामों, मजबूरों और नामर्दों का सहारा है। नामर्द?... नहीं। वह नामर्द नहीं है, वह गुलाम है। जो कुछ भी वह चाहता है, कर नहीं पाता।

भुवन के पहुँचते ही लौह-द्वार खुला और उसके भीतर वह दाखिल कर दिया गया। कुछ देर तक उसे वहीं रुकना पड़ा। इस द्वार के बाद भी एक महाद्वार था जिसमें काठ के बड़े-बड़े किवाड़ लगे थे। भुवन ने जो उस तरफ़ नजर फेरी तो देखा बहुत-सी आँखें उस काठ के किवाड़ की छेदों से उसे घूर रही हैं। भुवन काँप उठा। अब उसे भी यों ही बन्द कर दिया जाएगा और

उसके बाद वह कुछ भी नहीं देख पाएगा। उसकी भावना घुट-घुटकर मर जाएगी, उसकी प्रतिभा सड़ जाएगी और उसकी बदबू से आज की शासन-व्यवस्था, आज की सरकार और आज का समाज घबड़ा उठेगा, लेकिन उससे क्या ? तब तक तो वह मिट गया होगा। और तब भुवन उस व्यक्ति के चरित्र पर विचार करने लगा जो बिना किसी कारण के दूसरों की बुराई कर बैठता है।

फिर भुवन की तलाशी हुई और उससे कुछ प्रश्न पूछे गये। और तब काठ के विशाल फाटक का एक छोटा-सा दरवाजा खुला जिसमें होकर वह भीतर पहुँच गया। बिल्कुल जेल की चहारदीवारी के अन्दर।

बहुत से क़ैदी वहाँ पहले से ही खड़े थे। तरह-तरह के प्रश्न पूछे जाने लगे। किसी ने अलग से ही खड़े-खड़े शाबाशी दी।

"स्वागतम् ! आइए, यहाँ शेर रहा करते हैं।"

किसी ने पूछा—

"क्यों गुरू, कौन दफ़ा है ?"

एक लम्बे तगड़े आदमी ने डपटते हुए कहा—

"क्यों दिक करते हो बेचारे को" और उसके बाद भुवन के हाथ से उस ने कम्बल ले लिए और सहानुभूति दिखलाता हुआ अपने साथ ले चला।

भुवन उस अबोध बच्चे की तरह चुपचाप चला जा रहा था जिसे कई साथियों ने मिलकर धोखे से खूब पीटा हो और वह बेचारा कुछ कर नहीं पाया हो। उसने चारों तरफ़ देखा एक अजीब वातावरण—बेफिक्र, जैसे किसी को कोई ग़म नहीं, कोई चिन्ता नहीं, कोई ग्लानि नहीं। एक ने ज़रा आगे बढ़कर कहा—

"अच्छा हुआ चले आये। अरे बाहर की ज़िन्दगी भी कोई ज़िन्दगी है। दिन-रात पसीना बहाओ फिर भी भूखे-के-भूखे। मुझे देखो, मेरा यह

जेल आना आठवीं दफ़ा है। बाहर तबीयत नहीं लगती।".........

यह आदमी कुछ और बोलना चाह रहा था कि एक दुबले-पतले कैदी ने ऐंटते हुए कहा—

"अबे जा, गोबर चोर कहीं का। चार महीने की सजा मिली है और उसी पर रोब झाड़ता है। मुझे देख, मैं आठ साल से पड़ा हूँ यहाँ।"

लेकिन भुवन किसी की बात भी नहीं सुन रहा था। उसका मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था। हालाँकि भुवन का कोई भी अपना सगा नहीं था जिसकी उसे चिन्ता होती या मोह होता फिर भी वह रो रहा था। उसकी आँखों में आँसू नहीं थे। उसकी जबान पर कोई आवाज नहीं थी। उसकी नसों में कोई जोर नहीं था। फिर भी वह रो रहा था। मन-ही-मन घुट रहा था—खामोशी की साँस पीता हुआ। वह चिल्ला-चिल्लाकर कहना चाहता कि वह निर्दोष है, वह निर्दोष है लेकिन उसकी जीभ सट गई थी। उसे लग रहा था कि वह जंगली कुत्तों के बीच छोड़ दिया गया है और सभी एक साथ ही उस पर गुर्रा रहे हैं—भौंक रहे हैं और उसे जैसे लकवा मार गया हो। उसके दिमाग़ में बहुत-सी आवाज़ें एकसाथ गूँज रही थीं और उसका दिमाग़ बिल्कुल खाली था। उसकी आँखों के सामने कितनी ही तस्वीरें नाच रही थीं और उसकी आँखों के आगे बिल्कुल शून्य था। वह बम्बई जाने वाला था, वह रमाकान्त से बातें कर रहा था, वह दालमण्डी में दारोगा के पास खड़ा था, भीड़ उस पर थूक रही थी, मोहन उस पर थूक रहा था। रमाकान्त उस पर थूक रहा था, भाभी उस पर थूक रही थी, भाई साहब थूक रहे थे, डिग्री उड़ी जा रही थी। उसने खून किया है!

'उस पर यही दोष लगाया गया है।'

'उसने लक्खी की अम्मां का खून किया है। उसने एक बूढ़ी औरत की हत्या की है।'

'वह खूनी है!'

'वह हत्यारा है।'

'सामने जेल की दीवार, चारों तरफ़ जंगली कुत्ते।'

'उसने खून किया है ? वह खूनी है, वह वहशी है, वह शेर है, भूखा शेर, सबों का खून पी जाएगा। उसकी भुजाओं में ताक़त है तभी तो उसने खून किया है।'

भुवन की आँखों में खून नाचने लगा। उसे लगा यह कुत्ते उसे नोच-नोचकर खा जाना चाहते हैं। वह पागल हो रहा था। अचानक ही उसकी मुट्ठियाँ कस गईं। नहीं वह अपने को यों ख़त्म नहीं होने देगा। उसके दाँत कटकटा उठे। वह अकस्मात चिल्ला पड़ा।

"भाग जाओ।"

सब लोग घबराकर ज़रा हट गये। सब-के-सब भौंचक-से देख रहे थे। भुवन ने बगल में खड़े दुबले-पतले कैदी का गला पकड़ लिया जो आठ वर्षों से जेल में पड़ा था। उस कैदी की आँखें बाहर निकल आईं। वह चिल्ला भी नहीं पा रहा था कि किसी ने पीछे से भुवन के सर पर जोर से लोहे का कटोरा जमा दिया और फिर तो भुवन लात घूँसों में वहीं ढेर होगया। किसी को इस घटना का अन्दाज़ा भी नहीं था। सब-कुछ अचानक ही क्षण-भर में होगया। जब कैदियों ने देखा कि भुवन बेहोश हो गया है और उसके सर से खून निकल रहा है तो सब-के-सब नौ-दो ग्यारह होगए। लेकिन वह लम्बा-तगड़ा क़ैदी, जिसके पास भुवन का कम्बल पड़ा था दौड़ा हुआ जमादार के पास पहुँचा। जेलरसाहब भी आये। डाक्टर, आया, जब जेलर को पूरी कहानी मालूम हुई तो उन्होंने जमादार को डाँटते हुए कहा कि यह तो दफ़ा ३०४ का मुजरिम है इसे इस तरह अकेला क्यों छोड़ा गया ? मरहम-पट्टी के बाद भुवन को सेल में बन्द कर दिया गया।

काफ़ी देर के बाद भुवन को होश आया। उस समय अँधेरा हो गया था। हलका-हल्का प्रकाश उसकी छोटी-सी कोठरी में पड़ रहा था। भुवन को

अपना सर भारी मालूम पड़ा। वह जो उठना चाहा तो उठ नहीं सका। सोये-सोये ही उसने सर टटोला, महसूस किया, पट्टी बँधी है। उसके समूचे शरीर में दर्द था उसने सर घुमाकर अपनी कोठरी को देखा जिसमें कोई खिड़की नहीं। दरवाजे से अभी थोड़ा-थोड़ा प्रकाश आ रहा था जिस में उसने देखा उसकी कोठरी लगभग पाँच हाथ चौड़ी और दस-ग्यारह हाथ लम्बी है। छत बिल्कुल सटी हुई। उसे दिन की घटना याद आने लगी हाँ वह बावला हो गया था, किसी की गरदन दाब दी थी और तब लोगों ने उसे खूब पीटा होगा। भुवन को अपनी हालत पर थोड़ी हँसी आई। यों ही, काफ़ी देर तक वह छत की ओर देखता लेटा रहा। उठने की तबीयत होती तो सोचता थोड़ा और आराम कर लूँ। और बहुत देर तक लेटा रहा चुप-चुप। उसके सर में जोरों से दर्द था। लेकिन उस दर्द को भी वह भूल जाना चाहता। वह बदकिस्मत है। उसका जीवन ही इसीलिए बना है कि वह काँटों से छिद जाए और तब भी आह न करे।

कुछ देर तक लेटे रहने के बाद बहुत मुश्किल से भुवन उठा। उसका कण्ठ सूख रहा था। जीभ से होंठ चाटते हुए उसने कोठरी को घूरकर देखा कि शायद कहीं पानी रखा हो! लेकिन नहीं, सेल में जानवर रखे जाते हैं जो खून के प्यासे होते हैं। कम-से-कम व्यवस्था तो यही सोचती है। भुवन दरवाज़े के पास आया, सीखचों को पकड़कर उसने एक आवाज़ लगाई।

"कोई है?"...

कुछ देर तक भुवन प्रतीक्षा करता रहा। उसने फिर आवाज़ लगाई। कई बार पुकारा तब कहीं जाकर एक संतरी साहब झूमते हुए तशरीफ़ लाये। भुवन की तबीयत हुई कि इसका भी गला दाब दे। लेकिन वह चुपचाप सीखचों को पकड़े खड़ा रहा। संतरी ने निकट आकर पूछा।

"क्या है?"

"भइया जरा पानी मँगवा दो, बड़ी प्यास लगी है।" भुवन ने दांत निपोड़ते हुए कहा। "अभी तो मैं बिल्कुल अकेला हूँ ड्यूटी पर।"

"अरे तो जेल तोड़कर कौन भागा जाता है। जरा कृपा कीजिए।" भुवन के स्वर में क्षोभ झलक रहा था।

"जल्दबाजी से यहां काम नहीं लिया जाता है। जमादार साहब आते हैं तो इन्तजाम हो जाएगा।" संतरी ने खैनी पीटते हुए कहा।

भुवन जलकर राख होगया। प्यास से वह मरा जा रहा था और पानी के अभाव में प्यास और जोर मार रही थी लेकिन वह करे तो क्या? अगर अभी बाहर निकल जाए तो इसका भी गला घोंट दे। उसने जरा क्रुद्ध होकर कहा—

"तुम लोग जानवर हो जानवर, आदमी नहीं।"

"अबे तुम ताम किया तो हाथ भर जीभ खींच लूँगा।..."

..."तुम्हारे बाप का घर नहीं है यह जेल है।"...

सन्तरी अजीब भद्दी-भद्दी गालियाँ देने लगा। गुस्से से भुवन को हुआ कि अपना सर आप पटककर फोड़ ले। आज उसका पिता, उसकी...सब गाली सुन रहे हैं। क्या इससे बढ़कर भी कोई सजा हो सकती है? उसकी आँखें अपने-आप बन्द होगईं। वह गाली देना भी नहीं जानता वरना उसी से प्रतिशोध ले लेता।

सिपाही जाने लगा तो अचानक भुवन को एक उपाय सूझा जिससे वह पानी भी पी ले और बदला भी चुका ले। उसने सन्तरी को करीब बुलाया पहले तो सन्तरी झल्लाया लेकिन फिर अपने-आप ही लौटकर नजदीक आया। भुवन ने बड़ी नम्रता से कहा—

"सिपाहीजी, बड़ा उपकार मानूँगा अगर आप एक मग पानी ला दें। इसके लिए आप जो कुछ हुक्म दीजिए मन्जूर है।"

"अबे तुम्हारे पास है क्या जो हुक्म दें?"

"जी है एक सोने की अँगूठी, एक मग पानी के लिए मैं यह अँगूठी तक दे सकता हूँ।" सिपाहीजी के मुँह में पानी आगया, बोले—अच्छी बात है। एक खतरा ही सही तुम्हारी खातिर देखें, अँगूठी।

भुवन ने अँगूठी निकालकर दे दी। और मग भी दे दिया। जब सन्तरी पानी लाने चला गया तो भुवन ने तय किया कि जब वह पानी ले लेगा तब सन्तरी की मरम्मत करेगा। उसने उसे गालियाँ दी हैं। इसके लिये वह सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है लेकिन प्यास नहीं। वह सीखचों से हाथ बढ़ाकर सिपाही के गाल का माँस नोच लेगा। पानी देने के लिए जब वह अपना हाथ सीखचों के भीतर करेगा तब भुवन उसका हाथ तोड़ देगा।

सिपाही पानी लेकर आया। भुवन प्यास से अधमरा हो रहा था। सिपाही ने पानी बढ़ाते हुए कहा—

"तुम बड़े अच्छे आदमी मालूम पड़ते हो, एक मग पानी के लिए सोने की अँगूठी दे दी। यहाँ तो जो भी आते हैं अव्वल दर्जे के बदमाश होते हैं। धेलातक मुँह में छुपाये रखते हैं।" सन्तरी दाँत निपोड़ रहा था। भुवन ने सतर्कता से पानी लेने के लिए हाथ बढ़ाया। शैतानी चमक उठी भुवन की आँखों में। सन्तरी का पूरा हाथ सीखचे के भीतर था। दाँत पीसता हुआ भुवन झपटा लेकिन नहीं...वह सन्तरी को कुछ नहीं कहेगा। इस बेचारे का कोई कुसूर नहीं। इन लोगों का तो काम ही हो गया है चोर और डाकुओं से उलझने का। अगर आज मैं मजबूर हूँ तो यह बेचारा भी मजबूर है। गुलाम है, कुत्ते की जिन्दगी बिताता है। एक अँगूठी पर गुलाम होगया। इसने मुझे अभी-अभी अच्छा आदमी कहा है। यह मुझे पानी पिला रहा है। नहीं, वह आभार नहीं भूल सकता।

भुवन ने चुपचाप पानी ले लिया। इसके बाद बहुत देर तक वह दरवाजे पर बैठा रहा। सामने थोड़ा-सा आकाश दीख रहा था जिसमें दो-चार तारे चमक रहे थे—धुँधले-से। जेल में आकर बेचारा आकाश भी

ैसा बन गया था ? छोटा-सा, संकुचित । फिर भी जैसे भुवन के लिए
तना ही पर्याप्त था । वह एक टक उसे देखता रहा । और बहुत देर तक
ी ही देखता रहा । उसका ध्यान टूटा जब एक कैदी के साथ जमादार
सका खाना लेकर आया ।

लेकिन उस रात उसने कुछ भी नहीं खाया ।

बहुत रात तक भुवन योंही आकाश की ओर देखता रहा जैसे वही
क राह है जिस में होकर उसे शान्ति मिलती है । जैसे वही एक सहारा हो
जसका अवलम्ब लेकर वह जीवन तय कर सकेगा । भौतिक निराशा के
न्तिम छोर से ही आध्यात्मिक आशा का पल्ला शुरू होता है जिसे पकड़-
र आदमी अपने को छिपा लेना चाहता है, भूल जाना चाहता है ।
ेकिन उसमें भी कितनी बड़ी वेदना रहती है । भुवन जो कुछ देखता है
सी में विश्वास करता है । कभी-कभी आगम की उम्मीद बँधती है और
ब वह और भी बावला हो उठता है । कहीं भी शान्ति नहीं । कहीं भी
ुख नहीं । अच्छा यही है कि वह जो है उसी को देखे, समझे और तय
रने की कोशिश करे । भूत मर चुका । भविष्य अन्धकार है और वर्तमान
खदायी । अगर वह कुछ बना सकता है तो अपने को ही बना सकता है ।
हाँ है वहीं परिवर्तन ला सकता है और तभी कुछ उम्मीद है । तभी
यवस्था के परिवर्तन की उम्मीद है । उम्मीद ! उम्मीद ! जैसे उम्मीद से वह
भी भी छुटकारा नहीं पा सकेगा । वह भागना चहता है लेकिन भाग
हीं पाता । भाग भी नहीं सकता । उसे सब कुछ देखना होगा । जीवन
र्तमान का ही दूसरा नाम है । वह देखता है, वह रोता है, वह सोचता
, वह चलता है, वह खून करता है, वह जेल में है वह है...है...है ।
स, यही जीवन है । जीवन ! और तब भुवन को सोपेनहावर की पंक्ति याद
ाई कि "बेचैनी ज़िन्दगी के अस्तित्व को साबित करती है ।" भुवन सोचता
हा, यही जीवन है अन्यथा वह मरा होता...

भुवन को नींद आने लगी फिर भी बहुत देर तक वहीं झपकता रहा। दूर पर सन्तरी चिल्ला पड़ता—"जंगला, ताला, बत्ती सब कुछ ठीक है।"

जेल की दीवारों से यह कर्कश संगीतमय चीख टकरा उठती। पहरेदारों की ड्यूटी बदल चुकी थी। भुवन दरवाजे के पास ही लुढ़क गया।

: ६ :

जेल का एक छोटा-सा हाता था। उस हाते में पाँच छोटी-छोटी कोठरियाँ थी जिन्हें सेल कहा जाता। दिन में भुवन को एक घण्टे की फुर्सत मिलती, जिसके दरम्यान उसे बाहर जाकर स्नान आदि से निवृत्त हो आना पड़ता। उसके बाद दिनभर सेल के हाते में चक्कर काटता। और शाम को फिर अन्धेरी कोठरी में बन्द कर दिया जाता। सेल के उत्तरी-पूर्वी कोने पर एक चबूतरा बना था और ठीक उसी के ऊपर आम के पेड़ की दो शाखाएँ फैली हुई थी जो शाखाएँ दीवार के उस पार एक बूढ़े आम के पेड़ की देन थीं।

भुवन दिन भर उसी चबूतरे पर बैठा करता। अब वह जेल की आबहवा का आदी हो गया था। अँगूठी वाले सन्तरी से उसकी मित्रता हो गई थी। भुवन ने जब शुरू में देखा था तो लगा यह सन्तरी बिल्कुल जानवर है। लेकिन नहीं...उसका सोचना बिल्कुल गलत निकला। भुवन को अब पश्चात्ताप हो रहा था कि क्यों वह बिना किसी कारण किसी पर गलत ख्याल बना लेता है? सन्तरी का नाम अनूपसिंह है। वह लगभग सात वर्षों से सन्तरी का काम करता है। अनूपसिंह का अपना कोई सिद्धान्त नहीं है। न तो वह इन्सान है और न जानवर, बल्कि दोनों के बीच का ग़रीब। उसके आठ बच्चे हैं जिनकी परवरिश उसे ही करनी होती है। और इसीलिए वह नौकरी करता है। रुपये के लिए, जिससे रोटी मिलती है, कपड़े मिलते हैं, ...वह सब कुछ कर सकता है। क्योंकि उसके बच्चे है, उसकी बीवी है और अनूपसिंह उन्हें जिन्दा रखना चाहता है। अनूपसिंह भला है।

आज भी भुवन के पास ही बैठा हुआ अनूपसिंह अपने परिवार की तकलीफ़ें सुना रहा था। भुवन क्या कहे! वह यही सोच रहा था कि सबों की अपनी कहानी है, अपना दर्द है, अपनी खुशी है। कोई भी अपने को इस मामले में अधूरा नहीं समझता। हर इन्सान सोचता है कि वह अभाव में है, वह बदक़िस्मत है। भुवन को दया आती बिचारे सिपाही पर। क्या आज संसार की पूरी आबादी ही दर्द में भीगी हुई शराबोर है? क्या कोई भी ऐसा आदमी नहीं जो पूर्ण हो? खुश हो? संसार के विरागी महात्मा जो आत्म-चिन्तन में लिप्त हैं। लेकिन...लेकिन वे भी तो अपनी कहानी सुनाते फिरते हैं। वे भी तो संसार को चेतावनी देते फिरते हैं। वे भी तो अपनी तकलीफ़ों की अतिशयोक्ति से संसार को वैराग्य का उपदेश देते हैं। वे तो और भी ढोंगी हैं क्योंकि जीवन से भागकर भी जीवन में लिप्त रहते हैं। दुनिया से वैराग्य लेकर भी भक्तों से अनुराग रखते हैं। भुवन सोचता ही रह जाता।

अनूपसिंह को पता था कि भुवन पढ़ा-लिखा आदमी है और वह सरकार को गाली देने लगता। "यह सरकार खोखली है जिसे न्याय-अन्याय का ज्ञान नहीं। यह सरकार अन्धी है जो अपनी योग्य प्रजा की ही हत्या कर डालती है।" अनूप आवेश में आ जाता तो बहुत अजीब-अजीब बातें बकने लगता। "हम लोगों का खून चूस-चूसकर मौज मारने वाले अफ़सर जानवर हैं। हम लोग पूरी ड्यूटी देते हैं। कोई क़ैदी भाग जावे तो उसकी सारी ज़िम्मेदारी हम लोगों पर आती है। कहीं बलवा होजाये तो लाठी और गोली चलाने का पाप हम लोगों को लेना पड़ता है। लेकिन हमारे बच्चों को भर-पेट भोजन भी नहीं मिलता। भुवन बाबू, हम लोग भी स्वप्न देखा करते थे। लेकिन आज रग-रग में घृणा भरी हुई है। महलों, मोटरों, बाइसकोपों और वेश्याओं की मौज लेने वाले बड़े बाबू रईस बनते हैं लेकिन उन्हें क्या पता इस रईसी की नींव में कितनों की लाशें सड़ रही हैं।"

अनूपसिंह योंही बहुत-सी बातें बक जाता। आज जेल में आये भुवन को पाँच महीने बीत गये। लेकिन आज तक उसके मुक़दमे की सुनवाई नहीं हुई। यही उसके जीवन की कीमत है। यही उसके प्रजा होने का गौरव है।

आज चबूतरे पर बैठा भुवन अनूपसिंह से कुछ इधर-उधर की बातें कर रहा था कि बाहर कुछ आदमियों के चलने की आवाज सुनाई दी। अभी-अभी भुवन खाना खाकर बैठा था। अनूपसिंह ने दरवाजे की तरफ़ घूमकर देखा।

"अरे, यह तो कोई नया कैदी आया है।"

भुवन ने आश्चर्य से देखा रामू और मदन खड़े थे—मुस्कराते! जैसे उनके दिल पर कोई असर नहीं। वही मस्ती, वही चढ़ी हुई भौंहें, घूमी हुई मूँछें, जैसे रामू के लिए जेल के बाहर और भीतर में कोई भेद नहीं। भुवन क्षण भर मुँह बाए खड़ा रहा। रामू उसे पहचान नहीं पाया। भुवन की दाढ़ी बढ़ गई थी। चेहरा पीला पड़ गया था। खूबसूरत पढ़ा-लिखा भुवन कंकाल की तरह लग रहा था। रामू ने उसे ग़ौर से देखा जैसे पहचानने की कोशिश कर रहा हो। लेकिन उसके देखने में एक अजीब पीड़ा थी, जिसे कोई भी भाँप सकता था। रामू मुस्कराता हुआ सेल के हाते में दाखिल हुआ था लेकिन भुवन को देखते ही उसकी मुस्कान मर गई। शायद वह सोच रहा था कि बेचारा भुवन आज उसी के कारण यह सब भोग रहा है। भुवन कुछ देर के लिए भूल गया कि वह जेल में है, वह बी० ए० है और उसके सामने रामू गुंडा है। उसके मुँह से चीख की तरह रामू का नाम निकला और वह रामू के गले से लिपट गया। निर्मम रामू की आँखों में भी आँसू छलक आये थे।

कुछ देर तक बिल्कुल खामोशी रही। भुवन सोच रहा था, इन्हीं लोगों के कारण उसे जेल हुई। इन्हीं लोगों की संगत में पड़कर आज वह सीखचों

से घिरा है। लेकिन उससे क्या? कितना अच्छा आदमी है रामू। कितनी अच्छी है इसकी संगत जिसने मुझे अनुभव दिया, संघर्ष दिया, अनुभूति की तीव्रता दी और उदारता से भरी दिलेरी दी। रामू गुण्डा है लेकिन इसकी संगत ने मेरे हृदय में गुण्डों के लिए भी श्रद्धा बसा दी। मैं अब नफ़रत किसी से भी नहीं कर सकता। समाज में नफ़रत के पात्र तो यही सब होते हैं न! लेकिन इनका दिल कितना पाक-साफ़ है।

रामू के चेहरे पर विषाद की रेखा खिंच गई थोड़ी देर के लिए, लेकिन क्षण-भर के बाद ही वह मुस्कराता हुआ बोला—

"भुवन रंज तो नहीं हो मुझसे?"

"ज़रूर रंज हूँ। जेल में जो बन्द कर रखा है तुमने।" भुवन ने हँसते हुए कहा। रामू की भवों पर बल पड़ गये। वह बहुत सीधा आदमी था। भुवन का मज़ाक समझ नहीं पाया। उसने ग़ौर किया कि सचमुच भुवन को जेल में बन्द करने वाला वही है। लेकिन यह क्या...उसने जो सर उठाकर देखा तो भुवन बिल्कुल अबोध हँसी हँस रहा था। रामू को व्यंगात्मक भाषा समझने मे थोड़ी देर लगती, लेकिन आकृति का भाव समझने में वह शायद ज़माने से भी आगे था। उसने भुवन के दोनों कन्धों पर ज़ोर देते हुए कहा—"घबड़ाओ नहीं भुवन, मैं जानता हूँ कि तुम जेल क्यों आये।"

हाँ, सुना नहीं तुमने, मैंने लक्खी की अम्मां की हत्या कर दी है? कम्बख्त दारोग़ा तुम्हारा नाम भी कह रहा था। मुझे तो वह साज़िश का एक पेंच भर समझता है लेकिन तुम्हे?"

अभी भुवन वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि रामू ज़ोर से ठहाका मारकर हँसने लगा। भुवन की आधी बात मुँह में ही रह गई और वह मुँह बाए देखता-भर रह गया। फिर रामू जमादार की ओर रुख करके बोला—

"कुछ खाना-वाना खिलाइयेगा।"

जमादार साहब चाबी का गुच्छा बजाते हुए बोले—

"हाँ, हाँ, अभी तो सभी कैदी खाये भी नहीं होंगे। मैं अभी अनूपसिंह के हाथ भिजवा देता हूँ।"...और यह कहकर दुबले-पतले बूढ़े जमादार साहब पेंग मारते हुए सेल के हाते के बाहर होगए। बाहर ताला बन्द किया और फिर "अभी भिजवा देता हूँ" कहकर चले गये।

सब-के-सब कुछ देर तक फाटक की ओर देखते रहे। उसके बाद खामोशी को भंग करता हुआ रामू बोल उठा—"भुवन, हम लोग सिर्फ़ तुम्हें देखने आये हैं। मैं तो अकेला ही आना चाहता था लेकिन यह कम्बख्त कहीं भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़ता।" उसका इशारा मदन की ओर था। जैसे भुवन समझ नहीं पाया उसने भवें सिकोड़ते हुए पूछा—

"मुझसे मिलने आये हो?"

"हाँ।"

"लेकिन तुम तो खाना वगैरह मँगवा रहे हो और यह कम्बल वगैरह भी आ गया है।" भुवन बच्चे की तरह बोल रहा था। रामू ने हँसते हुए कहा—

"तुम नादान के नादान ही रह गये। अरे, हम लोग जिससे मिलते हैं गले लगकर मिलते हैं। ऐसा भी क्या मिलना कि नमस्कार हुआ नहीं और हुक्म दीजिए कि घड़ी आगई।"

फिर रामू ने बताया कि वे दोनों जान-बूझकर गिरफ्तार हुए हैं, वरना पुलिस की क्या मजाल थी कि रामू को हथकड़ी पहना दे। रामू को ही क्यों, उसके किसी भी साथी को गिरफ़्तार करना आसान नहीं है। रामू ने बताया कि उसके सभी साथियों पर वारण्ट हैं। आजकल अड्डे पर कोई भी नहीं रहता। कुछ दिनों तक तो वह इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा कि हाजिर हो जाए या नहीं। अन्त में हाजिर होने की बात ही तय पाई। भुवन आश्चर्य से मुँह बाए रामू को देख रहा था। अन्त में रामू ने कहा—"भुवन, तुम्हें

आश्चर्य हो रहा होगा कि आखिर यह खून किसका और क्यों हुआ जिसके जुर्म में हम लोग सबके सब गिरफ्तार हैं ?" कुछ देर तक रामू ज़मीन की ओर देखता रहा। भुवन ने ग़ौर किया कि रामू की आँखों में थोड़ा पानी उमड़ आया है। लेकिन वह समझ नहीं पाया कि आखिर इस आँसू का अर्थ क्या है। रामू ने फिर कहना आरम्भ किया—

"यों तो ज़िन्दगी भर भटकता ही रहा लेकिन वार कभी खाली नहीं गया। यह पहली बार है कि मुझसे चूक होगई। बेचारी बुढ़िया जो खुद ही मर रही थी, उसी का कत्ल होगया।"

भुवन चौंक उठा। जैसे अचानक ही किसी ने अनचोके में उसे एक तड़ाक कस दिया हो, उसका सारा शरीर झन-झना उठा—असंभाव्य आशंका से। क्या रामू हत्यारा भी है ? यही रामू जो उसके सामने वृषभ कंध झुकाए खड़ा है। रामू ने एक वृद्धा की हत्या की है ? रामू गुण्डा ही नहीं हत्यारा भी है ? भुवन को लगा जैसे उसके चारों तरफ़ भयंकर शोरगुल हो रहा है। शोरगुल होता है और बन्द हो जाता है। रामू उसके सामने खड़ा है, रामू को वह पहचान नहीं पा रहा है। रामू का चेहरा बदलता जा रहा है, बदलता जा रहा है। ऐंठी मूँछें, चौड़ी मूँछें, बिखरी मूँछें, समूचे चेहरे पर भयंकर मूछें, खूनी आँखें, लाल शोले की तरह आँखें, लाल खून और पीब से भरी काली-सफ़ेद और पीली आँखें बड़े-बड़े बाल, डरावने जानवर से बाल...अजीब भयंकर, अजीब बीभत्स रूप हो रहा था रामू का। छीः छीः रामू ने एक वृद्धा की हत्या की है।

"लेकिन लक्खी बच ही गई आखिर, और अब उसका जिन्दा रहना भी जरूरी हो गया है। भुवन तुम मन-ही-मन नफ़रत कर रहे होगे, लेकिन सच मानो, मैंने जो कुछ भी किया है, एक दिलवाला आदमी वही करता, मैं सब कुछ बर्दाश्त कर सकता हूँ लेकिन विश्वासघात नहीं बर्दाश्त कर सकता। मैं साफ़ आदमी हूँ और उम्मीद करता हूँ कि सभी मेरे साथ साफ़

रहें। मैंने जो कुछ भी किया है जान-बूझकर नहीं किया है।"

रामू की बातों में सच्चाई और गहराई थी। भुवन ने महसूस किया कि रामू दुःखी है। जो कुछ भी उसने किया है, मजबूर होकर किया है। जो कुछ भी हुआ है समय ने कराया है। गीता के शब्दों में "सभी कर्म प्रकृति द्वारा होते हैं। आदमी तो महज पत्र-वाहक है।" वह व्यर्थ ही रामू पर दोष मढ़ता है। भुवन कृतघ्न है जो इतना शीघ्र रामू का आभार धो रहा है। भुवन मे कमज़ोरी आ गई है।

नहीं, वह भीतरी बातें नहीं जानता इसलिए कोई राय भी क़ायम करना ठीक नहीं। रामू नेक है। रामू इन्सान है कोई खास बात हुई होगी तभी रामू ने हत्या की। लक्खी वेश्या है, औरत है, भावावेश को उभारने वाली बातों की जननी प्रायः औरतें ही हुआ करती हैं। औरतों के चलते ही पुरुष बड़ा-से-बड़ा, ओछा-से-ओछा, भयंकर-से-भयंकर, बीभत्स-से-बीभत्स और सुन्दर-से-सुन्दर काम कर बैठता है। हत्या तो मामूली चीज़ है। सोने की लंका जल गई, उदयपुर और गुजरात बर्बाद होगया। सम्राट् ने गद्दी छोड़ दी। फलां ने आत्म-हत्या करली। अमुक पागल होगया। लेकिन क्यों?... भुवन की तन्द्रा टूटी जब रामू और मदन के लिए खाना आगया।

"मैं तो बिना प्याज के खा नहीं सकता और गोश्त भी चाहिए।" रामू ने अनूपसिंह पर झल्लाते हुए कहा। अनूपसिंह क्या, समूचा शहर रामू के भय से काँपता था। उसने दाँत निपीड़ते हुए कहा—

"अभी तो खा लो, शाम से प्रबन्ध होजाएगा।" भुवन को थोड़ी हँसी आगई। कल उसे एक रोटी घट गई लेकिन मित्र होने पर भी क्या मजाल कि अनूपसिंह एक रोटी भी ला दे। और अभी रामू की एक ही डपट पर गोश्त भी मिलेगा, प्याज भी मिलेगा और न जाने क्या-क्या मिलेगा। रामू ने भवें चढ़ाते हुए कहा—

"शाम को मैं जेलर साहब से मिलना चाहता हूँ। खबर कर दीजिए।

और देखिए, हम तीनों आदमियों के लिए एक ही तरह का खाना बनेगा।"

अनूपसिंह जाने लगा तो रामू ने पुकारते हुए कहा—

"एक काम आपको और करना है। लेकिन आपही को।"

"क्या ?" अनूपसिंह जैसे धन्य-धन्य होगये।

अभी तो यह पाँच रुपये का नोट लीजिए जिसकी मुझे सिगरेट चाहिए, कैंची। और रोज शाम को आप नगवाघाट चले जाइएगा, वहाँ एक आदमी मिलेगा। वह जो कुछ भी आपको देगा, लेते आइएगा, घबड़ाइएगा नहीं, कोई खतरनाक चीज़ नहीं मँगाऊँगा। यही रुपये-पैसे, चिट्ठी-पत्री। आपको पाँच रुपये रोज़ मिल जाया करेंगे।"

"लेकिन मेरी ड्यूटी तो बराबर बदलती रहती है। अगर शाम की ड्यूटी होगई तो क्या करूँगा ?" अनूपसिंह ने जरा गम्भीर होकर पूछा।

"मैं जमादार साहब से कह दूँगा" रामू ने भरोसा दिलाया और भोजन करने लगा।

भुवन फिर उलझनों में धँस गया कि आखिर क्या राज है रामू का ? इतनी धाक है इसकी ? लेकिन वह कुछ भी नहीं सोच सका—रहस्यमय !

: १० :

जबसे रामू जेल में आया है, भुवन काफ़ी आराम में है। अब न तो कोई जमादार उसे डाँट पाता है और न जेलर साहब की ही हिम्मत होती कि भुवन पर गुर्रा सकें। खाने-पीने की भी कोई तकलीफ़ नहीं रह गई है। रोज ही गोश्त मिलता, दूध मिलता और कभी-कभी अनूपसिंह बाहर से खोए की मिठाई वगैरह भी ले आता। एक जोड़ा ताश आ गया था—जिसमें अब भुवन भी हाथ बँटाता, गप्पें चलतीं, ठहाके लगते, गीत गाये जाते और कभी-कभी चुप-चुप बातें भी चलतीं। बचे हुए समय में भुवन लिखता-पढ़ता। जेल में अखबार का टुकड़ा भी मिल जाए तो भुवन को लगता, साहित्य का भण्डार ही मिल गया है। यहाँ तक कि सोने-चाँदी का भाव भी पढ़ जाता। पढ़ने की इच्छा होती लेकिन पुस्तकों के अभाव में लिखने का काम ही तेजी से चलता। रामू ने थोड़े-से कागज़ मँगवा दिये थे सो उन्हीं पर भुवन लिखता। और रामू ने यह भी कह दिया था कि वह जो कुछ भी लिखेगा, आसानी से जेल के बाहर मोहन के पास भेज दिया जाएगा।

जेल में भुवन को कभी-कभी अपने सगे-सम्बन्धियों की भी याद आती। भाई लोग कहाँ होंगे? क्या सोचते होंगे? उसकी इच्छा होती कि वह घर पर एक पत्र लिखे। लेकिन नहीं, लोग समझेंगे कि विपदा आई है तो पत्र लिखता है। सब-के-सब खिल्लियाँ उड़ाएँगे कि भुवन हत्या के अभियोग में गिरफ्तार है, भुवन हत्यारा है। घर से निकलकर उसे कहीं भी शरण नहीं मिली तो वह गुण्डा होगया उसने वेश्या की हत्या में योग दिया है। नहीं नहीं। वह घर पर पत्र नहीं लिखेगा। कभी नहीं लिखेगा। तो क्या संसार

में उसका कोई भी नहीं है जिसकी वह मधुर याद कर सके ? क्या सबसे गया-गुजरा वही है जिसके जीवन में किसी की याद करने का भी आनन्द नहीं ? आखिर उसमें क्या कमी है ? काश, उसकी कोई प्रेयसी होती तो आज वह भी बादल से सन्देश ले जाने का आग्रह करता। आज भी वह चाँद को देखता है, तारों पर हँसता है, हवा पर झुँझलाता है लेकिन यह सब चीजें उसके दिल में गुदगुदी नहीं पैदा करतीं। इन सब चीजों को देखकर वह कभी नहीं सोच पाता कि मेरी फलाँ इस समय सो रही होगी, इन्हीं तारों के नीचे और यह ठंडी हवा वहीं से आ रही होगी और यह चाँद जैसे यहाँ मुस्करा रहा है, मेरी फलाँ पर भी व्यंग कर रहा होगा और बेचारी ऐंठ-ऐंठकर, सुबक-सुबककर, घुल-घुलकर रह जाती होगी। भुवन की भावनाओं में कोई रस नहीं रहता कोई कल्पना नहीं रहती, कोई उम्मीद नहीं होती, कोई सहारा नहीं रहता, केवल होता नग्न सत्य, कठोर सत्य, जो यथार्थ को अपने सूखे अंकों में दबोचे रहता और भुवन का मस्तिष्क बौखला उठता, विद्रोह कर उठता जैसे वह पिसा जा रहा हो, जैसे उसके भूत की जगह वही सशरीर कठोर यथार्थ के अंकों में पड़ा हो, चीत्कार कर रहा हो लेकिन कोई चारा नहीं, कोई छुटकारा नहीं जैसे यह यथार्थ का अंक कोई धृतराष्ट्र का अंक हो। और तब भुवन का हृदय घृणा, विद्रोह, विषाद और निराशा के धुएँ से भर उठता और वह अपने-आप में घुटने लगा। भुवन अपनी भावनाओं को कागज पर उगल देता तब कहीं उसे थोड़ी-सी शान्ति मिलती।

आज रामू भी शाम से ही मौन है। वह कुछ बोलना चाहता है लेकिन बोल नहीं पाता। मोहन की ओर अर्थ-पूर्ण दृष्टि डालता है और फिर शायद अपने द्वन्दों में खो जाता है। भुवन ने महसूस किया कि रामू आज बेचैन है और अपनी बेचैनी वह खोल नहीं पा रहा है। इधर चार-पाँच दिनों से मदन और रामू फुस-फुसाहट की आवाज में कुछ बातें करते, बाहर चिट्ठियाँ आती और फिर उसका उत्तर लिखा जाता। लेकिन भुवन कुछ भी नहीं

समझ पाता कि आखिर इस फुसफुसाहट और रहस्यमय गुफ्तगू का क्या मानी हैं। वह रामू से अब भय भी करने लगा था, न जाने वह क्या कर बैठे। रामू सब कुछ है और खूँखार है। भुवन ने देखा कि हत्या करने के बाद भी रामू के जीवन में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। अलबत्ता जब मदन कभी-कभी लक्खी की बात चला देता है तो रामू अचानक ही मायूस हो जाता है। उदासी के साथ-साथ उसकी आँखों में खून उतर आता है और निचले होंठ के एक कोने को दाँतों से पकड़कर एक लम्बी साँस छोड़ देता है।

जब शाम को खाना-पीना समाप्त होगया तो रामू ने भुवन को अपने कम्बल पर बुला लिया। तीनों जने बैठे थे। कोई बोल नहीं रहा था। सभी खामोश, निर्द्वन्द और सशंकित। रामू ने खामोशी तोड़ते हुए कहा—

"भुवन, आज मैं तुम से अपनी जिन्दगी का राज कह सुनाना चाहता हूँ। हालाँकि मदन मेरे साथ आज दस वर्षों से है लेकिन इसे भी नहीं मालूम कि मैं कौन था और कैसे इस हालत में आया।" कुछ देर तक रामू जमीन की ओर देखता रहा। जेल के किसी दूसरे छोर पर कोई कैदी पूर्वी गा रहा था अपने दर्दीले स्वर में। जिसकी तान इन लोगों तक भी पहुँचती और छूकर स्वयं लौट जाती। रामू कहने लगा—

"मैं विशेषकर तुम से कहना चाहता हूँ भुवन, तुम पढ़े-लिखे आदमी हो, नौजवान हो। मेरी कहानी कोई खास दर्दीली नहीं है लेकिन इस में तुम समाज के खोखलेपन, स्वार्थ पूर्ण और विषमता से भरे जहरीले भाव पा सकोगे जो आज हम लोगों का भोज्य पदार्थ हैं, हम लोगों का जीवन है। हम लोगों से मेरा मतलब मेरे जैसे गुण्डे, आवारे और बर्बाद इन्सानों से है जिनकी कोई भी हरकत खून से खाली नहीं होती, लेकिन जिस समाज ने हम लोगों को पैदा किया, हम लोगों में जहर भरे, हम लोगों को आगे बढ़ाया आज वही समाज घेर-घेरकर हमारा शिकार करता है। हम से

नफ़रत करता है, हमें समाज का कोढ़ समझता है। मैं तुम से आज सभी बातें कह देना चाहता हूँ। क्योंकि न जाने क्यों, मुझे ऐसा लगता है कि उम्र में छोटा होने पर भी तुम मुझसे बहुत बड़े हो, बहुत आगे हो और शायद तुम से मेरी भेंट भी इसीलिए हुई कि मैं अपना सारा राज़ तुमसे कह सुनाऊँ। और तुम अपने समाज का अपनी सामाजिक व्यवस्था का और अपने देश का असली ढाँचा देख सको। लेकिन एक बात है, जिन-जिन जगहों का नाम मेरी कहानी मे आएगा उसका ज़िक्र कहीं मत करना। क्योंकि मेरे ऊपर आज तीन खून का अपराध है और मैं नहीं चाहता कि यहीं मेरा अपराध समाप्त होजाए। मैं आदमी हूँ, आदमियों में भूखा शेर। शेर मुझे बनाया गया जिससे मैं खतरनाक होजाऊँ और अपने मालिक की वफ़ादारी में उनके स्वार्थ का ओज फैलाता फिरूँ। तो हाँ, मेरा या उन जगहों का ज़िक्र मत करना। मदन और हम अब ज़्यादा दिन इस जेल की कोठरियों मे बन्द नहीं रह सकते। क्योंकि कहा न कि अभी मैं अपने अपराधों पर विराम चिह्न नहीं लगाना चाहता। अपराध क्यों, अपने कर्तव्य पर, समाज के हम भी तो सदस्य हैं और सभी सदस्यों के काम भी बँटे हैं जैसे खेती करना, बर्तन बनाना, गन्दगी साफ़ करना, शिक्षा देना, पूजा कराना, मौज करना, मनोरंजन का साधन जुटाना, भूखों मरना और चोरी-डकैती करना आदि जितने भी काम हैं सब-के-सब समाज की पूर्णता के द्योतक हैं। तो मैं अभी और कर्तव्य करना चाहता हूँ। जिस तरह की शिक्षा मुझे मिली है उसका उपयोग करना मेरा धर्म हो जाता है।" रामू कुछ देर के लिए चुप होगया। भुवन ने सीखचों की राह देखा...आकाश में कुछ बादल के टुकड़े इकट्ठे हो रहे हैं। बाहर संतरियों के बूट की आवाज़ आती। दूर पर पूर्वी का आलाप अभी भी चल रहा था और सामने लालटेन की भुकभुकाती ज्योति में रामू बैठा था, विशाल काय, भयंकर, संसार के प्रति प्रतिशोध और घृणा का तूफ़ान अपने में समेटे। जैसे रामू कोई दानव हो जो संसार को मसल

देना चाहता है, समाज के भूत को पकड़कर झकझोर देना चाहता है।

रामू ने एक सिगरेट सुलगाई और एक लम्बा भर-सांस का कश खींच कोठरी को धुँए से भर दिया। आज से पैंतीस साल पहले वह जौनपुर जिले के एक खैरी गाँव में पैदा हुआ था। जाति का ग्वाला होने के कारण बचपन से ही शरीर का दुरुस्त, दिल का उदार और दिमाग का कमज़ोर रामू सबों से उलझ जाता। दिन-भर तो गाय की चरवाही करता और रात को दूध रोटी खाकर चित हो जाता। जैसे सारी मस्ती और बेफ़िक्री इसी के भाग्य में पड़ी हो।

घर क्या था—फूस और बाँस का बना हुआ एक साया मात्र। जब वह दस साल का था तभी उसकी माँ मर गई और तब बच रहे उसके बाप और उसकी एक नन्हीं-सी बहन, फ़कत चार साल की, गुड़िया सी। रामू अपनी बहन को बहुत मानता। समय बचने पर अपनी बहन से ही उलझा रहता। उसे पुचकारता, नचाता, उसकी मूँछें बनाता और उसकी नन्ही-सी बहन रूपिया भी मस्त रहती। बेचारी को क्या पता कि उसकी मां मर चुकी है और वह टूअर है। रामू का बाप रात रात भर न जाने कहाँ गायब रहता। और तब रामू अकेले रहने का अभ्यस्त होगया। उसे किसी चीज़ से भय नहीं होता—अन्धकार से, न भूत से और न चोर से। अपनी बहन को दुलराता-दुलराता सो जाता। रात को कभी-कभी कुछ शोर-गुल सुनकर जब उसकी नींद टूटती तो देखता कि उसका बाप तीन-चार आदमियों से फुसफुसाहट के स्वर में बातें कर रहा है। यह कोई नई बात नहीं थी। रामू यही समझता कि मेरा बाप इसी तरह का कोई काम करता है। एक दिन अपनी बहन के साथ वह ठाकुर साहब के दालान में खेल रहा था। कई बच्चे ठाकुर साहब के ही थे जो अच्छे-अच्छे कपड़ों की परवाह किये बगैर दालान में धमकुचड़ मचा रहे थे। रामू अपनी बहन रूपिया के कन्धों पर दोनों हाथ रखे उसे अपनी देह में सटाए इन बड़े बाप के छोटे बेटों का

खेलना देख रहा था। रूपिया भी तमाशा देख रही थी लेकिन दोनों में-से किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि उस खेल में शामिल होजाय। कभी-कभी रूपिया सर उठाकर अपने पीछे खड़े भाई का मुँह देख लेती। रामू मुस्कराकर उसके कन्धों को थपथपा देता। ठाकुर साहब के बच्चों के अलावा ठाकुर साहब का एक नाती भी था, जिसकी उम्र लगभग ग्यारह साल की रही होगी। वह खेलता-खेलता रामू के पास पहुँचा और बोल उठा—

"रामू, तू मेरी नौकरी करेगा? मेरे बाबूजी के पास इतने रुपये हैं।" ठाकुर साहब के नाती ने अपने दोनों हाथ फैला दिये।

रामू जल-भुनकर राख होगया। लेकिन वह कुछ बोला नहीं। देखता रहा टुकुर-टुकुर। फिर रामू को गेंद खेलने के लिये कहा गया। रूपिया तमाशा देखती रही खड़ी-खड़ी और रामू जब कसकर गेंद को उड़ा देता तो वह अपने भाई की बहादुरी पर ताली पीट-पीटकर नाच उठती। रामू देह-हाथ का मजबूत बेचारा खेल की कोमलता को क्या जाने। जब उसकी हिम्मत खुली तो कूद-कूदकर गेंद मारने लगा। ठाकुर साहब का नाती उसके विरोध में था और वही सब बच्चों का सरदार भी था। जब उसने देखा कि रामू जमाये जा रहा है तो उसकी देह भी स्वाभाविक ईर्ष्या से जलने लगी। बच्चों में ईर्ष्या की भावना बहुत तीव्र हुआ करती है। क्योंकि वे जो कुछ भी करते हैं या सोचते हैं, अनजाने में ही, जिसका सम्बन्ध रागात्मक वृत्तियों से होता है। अगर कोई आगे बढ़ना चाहता है या उनका अधिकार छीनना चाहता है तो वे बर्दाश्त नहीं कर पाते और हृदय की विशुद्धता के कारण ऐसे व्यक्ति को जो उन्हें पदच्युत करना चाहता है, नोच लेना चाहते हैं, उस पर झल्ला उठते हैं, अपना सर आप फोड़ लेते हैं और अन्त में स्वयं ही चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगते हैं।

ठाकुर साहब के नाती ने गेंद के बहाने रामू को ही मौका मिलने पर लात जमाना शुरू कर दिया। रामू ने समझा यह भी खेल का ही एक

अंग है। वह बर्दाश्त करता रहा। इसी बीच रामू के पास गेंद आ रहा था। ठाकुर साहब के नाती ने गेंद के बहाने रामू पर लात चलाई और रामू ने गेंद पर कि बीच ही में ठाकुर साहब के नाती चित होगए। पक्का फ़र्श था और रामू ने देखा कि ठाकुर साहब के नाती मुँह के बल गिरे हैं। उसने झट से उठाया तो देखा उसकी नाक से खून आ रहा है। कुछ देर तक तो सभी लड़के एक-दूसरे का मुँह देखते रहे लेकिन तुरन्त ही छोटे बाबुओं में ठकुरई की भावना भड़क उठी और सबके सब रामू पर टूट पड़े। रुपिया चीखने-चिल्लाने लगी लेकिन रामू गरीब ग्वाले का बेटा था। हृष्ट-पुष्ट और यह सबके सब कोमल-कान्त-पदावली। रामू ने भी आँख मूँदकर जिसको जहाँ पाया दो-चार धौल जमा दिया। अभी यह चिल्ल-पों मचा ही हुआ था कि ठाकुर साहब के बड़े साहबजादे जो कहीं कालेज में पढ़ते थे, आ धमके और रामू को पकड़कर पीटना शुरू कर दिया। और जब थक गए तो उसे घसीटते हुए दालान के बाहर कर दिया और नौकर को भेजकर रामू के बाप को बुलवा भेजा। रामू रोया नहीं, चुपचाप बदन झाड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ और रुपिया के साथ अपनी झोंपड़ी की ओर चल पड़ा। रास्ते में उसका बाप आ रहा था। रुपिया सिसक रही थी। उसके बाप ने उससे कारण पूछा तो रामू खामोश ही रहा। वह जानता था कि उसके बाप को हवेली में क्यों बुलाया गया है। लेकिन उसे कोई भय नहीं था। जब उसके बाप ने उसके कान उमेठे तब कहीं वह बोला कि छोटे ठाकुर साहब ने मुझे पीटा है इसीलिए वह रो रही है। लेकिन रामू का बाप कुछ बोला नहीं...ओहो हो हो...करके हँस पड़ा और हवेली की ओर चलता बना।

कुछ ही देर बाद रामू का बाप बेंत की तरह काँपता हुआ आ पहुँचा और बिना कुछ पूछे-ताछे रामू को तड़ातड़ पीटना शुरू कर दिया। रुपिया चिल्लाने लगी। उसका बाप गाली भी देता जा रहा था लेकिन रामू खामोश था जैसे बचपन से ही वह लोहे का बना हो।

उस रात रामू ने खाना नहीं खाया। अपनी बहन को सीने से लगाकर सो गया। उसे उसकी माँ याद आने लगी। आँखों से आँसू उमड़ आए अपने-आप। लेकिन वह रोया नहीं। रूपिया अभी जग रही थी। अँधेरे में अपने भाई के चेहरे को घूर रही थी क्योंकि आज वह कुछ बोल नहीं रहा था, दुलरा नहीं रहा था, सिर्फ़ पीठ पर थपकी दिये चला जा रहा था। आज उसके मन में सबों के प्रति घृणा जन्म ले रही थी। सबों के प्रति, अपने बाप के प्रति, ठाकुर के प्रति, ठाकुर के खानदान के प्रति और ठाकुर की हवेली के प्रति। उसका बस चले तो वह सबों को निगल जाय। वह गरीब है शायद इसीलिए जानवर है। हाँ, जानवर ही तो। कभी-कभी जब वह झल्ला उठता है तो अपनी भैंस पर तड़ातड़ लाठी बरसाने लगता है। लेकिन ठाकुर तो भैंस चराता नहीं। उसके लिए तो गरीब ही भैंस है। रामू बच्चा था, कुल ग्यारह साल का लेकिन वह सब-कुछ समझता था। वह जानता था कि हवेली में अच्छे-अच्छे खाने पकते हैं। हवेली में बड़ी मौज है, हवेली में ठाकुर साहब या उनकी औरतें कोई काम नहीं करतीं बल्कि उसी की तरह नौकर-नौकरानियाँ खटती हैं। शायद रामू की ही तरह वे सब नौकर-नौकरानियाँ भी जानवर ही हैं जो खटने के लिए, पिटने के लिए पैदा हुए हैं। गुलाम! उस रोज़ उसके पड़ोस का रघू हवेली पर बुलाया गया था जिसे पकड़कर खूब पीटा गया और बाद सब लोगों ने उलटे रघू को ही उपदेश देना शुरू किया। रघू उदास चेहरा लिए लौट आया चुपचाप और आज...रामू ने क्या किया? किसका अपराध था?...रूपिया सो गई थी। रामू भी कुछ देर के बाद सो गया लेकिन घृणा जन्म चुकी थी, फैल रही थी घने अन्धकार की तरफ़। सपने में रामू बड़बड़ाने लगता और उसकी भवें चढ़ जातीं...चेहरा भयंकर हो जाता, खूनी की तरह।

रामू को इन्हीं अनुभवों के बीच होश आया। जवान हुआ और रामू के जवान होते-होते उसका बूढ़ा बाप मौत के गाल में चला गया।

: ११ :

ईर्ष्या आध्यात्मिक देन है। विशेषकर हमारे देश में। आरम्भ में जब मातृसत्ता रही होगी, उस समय की ईर्ष्या शारीरिक शक्ति के दुरुपयोग पर ही खत्म हो जाती होगी। लेकिन उस प्रवृत्ति को हम भूल नहीं सके। मातृसत्ता से पितृसत्ता आई और साथ ही ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का भी आदान-प्रदान होगया। अब औरतें सत्ता का उपयोग तो करती हैं लेकिन शक्ति के साथ नहीं, सौंदय की कोमलता के साथ। लेकिन आज भी औरतों में शारीरिक ईर्ष्या ही बलवती है। वे किसी सुन्दरी को देखकर जलमरती हैं। समाज के विकास के साथ ही सभ्यता का आगमन हुआ और ईर्ष्या के रूप में भी परिवर्तन आगये। शकराचार्य ने जो-कुछ भी किया वह आध्यात्मिक ईर्ष्या का ही कुफल था। बौद्ध गया के मन्दिर में ठीक बुद्ध की मूर्ति के आगे शिवलिंग की स्थापना कर दी गई। और आज हम जिस युग में चल रहे हैं उस युग में ईर्ष्या का रूप भी राजनीतिक ही हो गया है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से होड़ ले रहा है, एक परिवार दूसरे परिवार का विनाश चाहता है, एक गाँव दूसरे गाँव से उलझ जाता है, एक प्रान्त दूसरे प्रान्त को बुद्धू समझता है और एक देश दूसरे देश को खत्म कर देना चाहता है। लेकिन राजनीति में अब सैद्धान्तिक ईर्ष्या काम कर रही है। और आज के शंकराचार्य शान्ति और सुरक्षा की रक्षा के नाम पर बेधड़क किसी भी छोटे देश की सीमा में शिवलिंग की स्थापना किये चले जा रहे हैं। गाँव में अभी बर्बर-युग की ही प्रवृत्ति काम कर रही है। वही पेड़ पूजा, वही नाच-त्यौहार, वही गुलामी और शहंशाही ख्याल। अगर एक धनी परिवार दूसरे

धनी परिवार से आर्थिक तौर पर आगे बढ़ा जा रहा है तो दूसरा परिवार किसी भी सूरत से उसे खत्म कर देने पर तुल जाता है। भले वह सूरत सरकारी अदालत हो, हँसेरी की ताकत हो या सेंध डलवा देने की नीति हो। भुवन रामू की कहानी सुनता जाता और साथ ही इन सब कुव्यवस्था के मूल पर विचार भी करता जाता।

ठाकुर साहब गाँव के नये धनी थे, तरक्की पर थे। उनके सभी बाल-बच्चे पढ़े-लिखे थे और सभी सम्बन्धी जज-कलक्टर। पूरे गाँव में धाक जमी थी। देखते-देखते आलीशान मकान बनवा लिया...वह भी ऐसा कि आस-पास के सैंकड़ों गाँवों में किसी का भी वैसा मकान नहीं। उसी खैरी गाँव में एक और पुराने रईस थे बाबू हवलदारसिंह, जिनसे ठाकुर साहब के परिवार की कभी नहीं पटती। दोनों परिवार एक-दूसरे के जानी दुश्मन हो रहे थे। चरवाहों के झगड़ों से भी कभी-कभी पुलिस उतर आती। हवलदारसिंह कुछ नम्र स्वभाव के व्यक्ति थे, लड़ाई-झगड़े से दूर भागते। लेकिन जब ठन ही जाती तो किसी चीज की परवाह नहीं करते। एक रोज शाम को जब रामू अपनी गाय को सानी खिला रहा था तभी ठाकुर साहब की हवेली से बुलावा आया। न जाने क्यों, रामू को ठाकुर साहब के मकान से ही नफ़रत थी। वह ठाकुर साहब के नाम तक से भन्ना उठता। लेकिन खुले आम वह कुछ नहीं कर सकता क्योंकि वह गरीब था और ठाकुर साहब की रैयत। उसने तीन गायें पोस रखी थीं। एक गाय के दूध से वह दोनों भाई-बहन काम चला लेते और बाकी दो गायों का दूध दोनों शाम रूपिया हवेली पहुँचा आती। थोड़ा-सा खेत भी मालिक की ओर से मिला था। किसी क़दर रामू का काम चल रहा था। रामू को गाँव के सभी नौजवान मानते। रोज सुबह वह अखाड़े में जाता, जहाँ गाँव के नौजवान इकट्ठे होते, कुश्ती होती और आठ बजे तक रामू घर लौट आता। ठाकुर साहब की हवेली की तरह रामू की पहलवानी की शोहरत भी चारों ओर फैली हुई थी। आज अचा-

नक जो हवेली से रामू की बुलाहट आई तो रामू कुछ डर-सा गया। वह हवेली को दूर से ही नमस्कार करता। सोचता—जहाँ तक हो सके वह ठाकुर के क़दमों से अलग ही रहे तो अच्छा है। रामू जानता था कि अगर किसी ने उस पर ज़बान चला दी तो वह बिना परवाह किए उसकी ज़बान खींच लेगा। इसीलिए वह हवेली जाने से डरता क्योंकि वहाँ लात-जूतों से ही रैयत का स्वागत होता। अगर रामू के साथ किसी ने वैसा व्यवहार कर दिया तो वह खून पी जायगा। लेकिन रामू यह भी जानता था कि ठाकुर के हाथ में कानून की डोरी है, रुपये का चक्का है और इज्ज़त का घोड़ा है। अगर रामू कभी ऐसा काम कर बैठेगा तो उसकी जान भी नहीं बचेगी। और तब रूपिया का क्या होगा?......

सो आज रामू डर गया लेकिन उसने कोई ग़लती तो की नहीं थी। सानी लगाकर हवेली की ओर चल पड़ा।

ठाकुर साहब अकेले ही दालान में बैठे थे। उनके हाथ में पीतल का एक छोटा-सा खूबसूरत सरौता था जिससे सुपारी काटते जाते और फाँकते जाते। रामू को देखते ही ठाकुर साहब जैसे उछल पड़े—

"तुम तो रामू कभी दिखाई भी नहीं देते। एक तुम्हारा बाप था कि आठों पहर मदद को तैयार रहता। बेचारा! वैसा आदमी अब कोई नहीं बचा।" ठाकुर साहब की आँखें भर आईं।

रामू जैसे ज़मीन पर गिर पड़ा धप्प से। कहाँ तो वह ठाकुर साहब को गालियाँ दे रहा था—मन-ही-मन, और कहाँ अब अपने ही को कोस रहा था। सचमुच ठाकुर साहब कितने उदार हैं जैसे घमण्ड तो छू भी नहीं गया है। और एक वह है कि दिन-रात अनाप-सनाप सोचता रहता था। छीः! रामू गरदन झुकाए खड़ा रहा। ठाकुर साहब ने कुशल समाचार पूछा, रूपिया की हालत पूछी और गुस्सा भी दिखाया कि रूपिया का ब्याह क्यों नहीं कर देता। अगर उसके पास रुपये नहीं हों तो वह माँग क्यों नहीं

लेता उनसे। और जब ठाकुर साहब ने ग़ौर किया कि रामू अब कृतज्ञता से लद गया है, दब गया है तो ज़रा दुःखी होकर बोले—

"जानते हो रामू, हवलदारसिंह ने मेरे समूचे गेहूँ का खेत रात भर में ही चरवा दिया—वह जो पोखरे के नज़दीक का खेत है न, उसी को। तुम्हारे बाप की मृत्यु होते ही मेरा हाथ ही टूट गया जैसे, अगर तुम्हारा बाप आज ज़िन्दा होता तो हवलदार की यह हिम्मत भी नहीं होती।"

"तो क्या हुआ ? मुझे हुक्म दीजिए, मैं उसका सभी गेहूँ रात-भर में चरवा दूँ," रामू आवेश में बक गया।

"शाबाश, मुझे तुमसे ऐसी ही उम्मीद थी, तुमने अपने बाप की इज्ज़त बचा ली, लेकिन मैं ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहता हूँ," ठाकुर साहब की आँखों में शैतानी नाच रही थी।

"सो क्या ?" रामू ने ज़रा उत्सुकता दिखाते हुए पूछा, "तुम्हें उसके घर में डाका डालना होगा, सब-कुछ लूट लेना होगा, हवलदार का सर तोड़ देना होगा। बोलो, तैयार हो ?"

रामू का सर एकाएक चकरा गया। डाका डालना होगा ? नहीं, वह ऐसा काम नहीं कर सकता, अगर किसी ने पहचान लिया तो? सब लोग उसे सीधा-सादा एक पहलवान समझते है। गाँव के नौजवान उसकी इज्ज़त करते हैं। नहीं, नहीं, वह डाका नहीं डाल सकता। अगर ठाकुर साहब कहें तो वह खुले आम हवलदारसिंह का सर तोड़ सकता है और तब उसे याद आया कि उसका बाप रात-रात-भर कहाँ गायब रहता था। कई रात जब शोरगुल सुनकर उसकी नींद उचट गई थी तो उसने अपने बाप को कई आदमियों के साथ फुसफुसाते सुना था। रामू सब-कुछ समझ गया कि उसका बाप कहाँ जाता था, क्या करता था और ठाकुर क्यों इतनी प्रशंसा कर रहा है।

"क्या सोच रहे हो ? डर गये ?" ठाकुर साहब ने रामू के अहंकार को

छूने की कोशिश की। रामू अजीब संकट में उलझ रहा था। उसने सकुचाते हुए कहा—

"लेकिन सरकार, मैं तो इस काम को बिल्कुल नहीं जानता!"

"क्या बकते हो?" पेट से ही सब-कुछ सीखकर कोई थोड़े आता है। तुम बहादुर आदमी हो। तुम्हारे साथ कई नौजवान हैं। तुम चाहो तो समूचे गाँव को हिला सकते हो।"...ठाकुर साहब जरा जोश में आ गये थे। उन्होंने कहा—"घबराओ नहीं, आगे-पीछे की चिन्ता बिल्कुल छोड़ दो, मैं देख लूँगा। अगर तुम गिरफ़्तार भी होगये तो मैं अपनी सारी ताकत लगाकर तुम्हें छुड़ा लूँगा।"

रामू इन्कार नहीं कर सका। उसने कुछ नौजवानों को इस काम के लिए ठीक किया। गरीब को एक धनी की ईर्ष्या का सहारा मिला। गरीब, जो हवलदारसिंह या ठाकुर के सामने जबान नहीं हिला सकता था, ठाकुर की प्रोत्साहना पाकर एक बड़े घर में डाका डालने पर तैयार होगया। हवलदारसिंह के पास चिट्ठी भेजी गई। समूचे गाँव में तहलका मच गया। ठाकुर साहब भी मौका नहीं चूके और हवलदारसिंह को सहानुभूति के शब्द कह आये और राय भी दे दी कि पुलिस को सूचना दे दीजिए।

पुलिस का पहरा बैठा दिया गया। लेकिन निश्चित रात को डाका नहीं पड़ा। लोगों ने समझा, केवल डराने के लिए किसी ने यह जाल बिछाया है। तीन-चार रोज़ गुजर गये। पुलिस का पहरा हटा दिया गया कि एक रात को रामू सदलबल हवलदारसिंह की हवेली पर चढ़ आया। ठाकुर साहब की बन्दूक उसी के हाथ में थी। वह ठीक से चलाना भी नहीं जानता था हालाँकि उसे अच्छी तरह बता दिया गया था।

रामू मन-ही-मन डर रहा था, लेकिन अब तो कुछ-न-कुछ करना ही है। हवलदारसिंह ऊपर के कमरे में सोये थे। रामू खुद उनके पास पहुँचा। मजे से सामान लूटे गये। गाँव से एक चूहा तक नहीं निकला। रामू ने सोचा

कि हवलदारसिंह को दो-चार कुन्दा दे लेकिन वह हवलदारसिंह को पहचानता था। हवलदारसिंह के प्रति श्रद्धा रखता था और हवलदारसिंह ने उसे एक कुश्ती में बाजी मारने पर सौ रुपये इनाम में दे दिये थे। जिसकी गाय अब भी उसके पास मौजूद है। रामू बन्दूक ताने चुपचाप हवलदारसिंह के सामने खड़ा रहा। रात बिल्कुल सोई हुई थी। रामू के साथियों ने अवश्य ही कुछ ऊधम मचाया, नौकरों के सिर तोड़ दिये, कुर्सियाँ पटक दीं, हवलदारसिंह की बेटी का झौंटा नोच लिया और जब हजारों रुपये का जेवर तथा रुपये हाथ आगए तो सब-के-सब चलते बने। रामू ने डराने के ख्याल से हवा में एक फायर कर दिया और गाँव के चूहे अपने-अपने बिलों में चिहुँक गये।

गाँव के चूहे निकले लेकिन तब तक डाकुओं का दल बहुत दूर चला गया था। हवलदारसिंह गुमसुम खड़े थे अपने दालान के सामने, चूहे अपनी-अपनी भाषा में चुनचुना रहे थे। इधर रामू ने आधा रुपया ठाकुर साहब को दे दिया और बाकी रुपयों को अपने साथियों में बाँट दिया—स्वयं कुछ भी नहीं लिया। और इसके पाँच रोज के बाद ही ठाकुर साहब ने एक सुन्दर, अच्छी-सी गाय खरीदकर रामू के पास पोसिया लगा दिया। इसके बाद रामू का यह पेशा ही होगया। एक गाँव से दूसरे गाँव, तीसरे गाँव, फिर जिला भर में उत्पात मचने लगा। पुलिस हैरान थी। चारों ओर आतंक छाया हुआ था। बहुत से लोगों ने बन्दूक का लाइसेन्स ले लिया। लेकिन रामू का बाल बाँका भी नहीं हुआ। कुछ दिनों तक तो किसी की नज़र भी रामू की ओर नहीं गई। लेकिन धीरे-धीरे काना-फूसी होने लगी। रामू के चेहरे की सरलता न जाने कहाँ गायब होगई। पेशा और अन्तःकरण की भावनाओं की छाप से चेहरा अछूता नहीं रहता। लोग रामू से डरने लगे। लेकिन ठाकुर साहब की पहुँच बहुत दूर-दूर तक थी। उन्होंने निर्दोष आदमियों का नाम पुलिस में लिखवाना शुरू कर दिया।

रामू निर्विशंक होकर घूमता रहा। रूपिया सहमी रहती। अब रामू उससे यह नहीं पूछता कि उसने खाना खाया है कि नहीं। कभी-कभी जब रूपिया बहुत उदास लगती तो रामू केवल इतना कहकर हँस पड़ता, "तुझे किस चीज़ की चिन्ता पड़ी है जो उदास रहती है? अगले लगन में ब्याह दूँगा।" और इतना कहकर रामू ठहाका लगाता हुआ चल देता किसी ओर।

एक रोज़ रूपिया जब ठाकुर साहब के यहाँ से दूध देकर लौटी तो बिगड़कर बोल उठी—"मैं अब दूध देने नहीं जा सकती। तुम्हीं दे आया करना।" और इतना कहकर वह झोंपड़ी में चली गई। रामू देखता रह गया। कुछ समझ नहीं सका और मुस्कराता हुआ सिगरेट का धुआँ उड़ाने लग गया। इधर एक हफ़्ते से रामू कहीं नहीं जाता। एक रात को वह अपनी छाती में भाले का ज़ख्म लेकर लौटा और तब से घर में ही पड़ा रहता है। कुछ लोगों ने पूछा कि यह ज़ख्म कहाँ लगा तो हँसकर कह देता—"गाय की सींग से छिद गया है।" लेकिन लोगों को विश्वास नहीं हुआ। उसी रात खैरी से सात मील उत्तर मदनपुरा में भयंकर डाका पड़ा था। दारोगाजी इस गाँव में उसके दूसरे रोज़ ही आये और ठाकुर साहब के यहाँ कचौड़ी तोड़कर वापिस चले गये।

दिन बीतते गए, रूपिया जाती रही रोज़ दूध देने हवेली में, और वहाँ से उदास लौटती। रामू कभी-कभी कारण पूछ देता तो वह मुँह फुलाकर झोंपड़ी में चली जाती।

आज गाय ज़रा देर से लगी। रात हो गई थी। दूध लेकर जब रूपिया हवेली से चली गई तो रामू अपनी तैयारी में लग गया। आज उसे एक बड़े रईस के यहाँ डाका डालने जाना था। इधर उसने एक घोड़ा भी खरीद लिया था जो दिन-भर तो ठाकुर साहब के अस्तबल में बँधा रहता और शाम को रामू स्वयं ही उसे ले आता। उसने चुस्त पायजामा पहना, एक मोटा-सा

कथई रंग का कुर्ता देह पर डाल लिया और लालटेन सामने रखकर पगड़ी बाँधने लगा कि रूपिया सिसकती हुई आ पहुँची। रामू ने जो उलटकर देखा तो रूपिया जमीन पर औंधी पड़ी हुई जोर-जोर से सिसक रही थी। रामू की समझ में नहीं आया कि क्या बात हुई है। उसने जरा डपटते हुए पूछा—

"क्यों रो रही है? क्या बात है...बोलती क्यों नहीं?"

रूपिया और जोर से सिसकने लगी। बाहर घोर अन्धकार फैला था। आकाश में बादल उमड़ आये थे। कहीं से कोई आवाज नहीं आ रही थी। केवल रूपिया के सिसकने की धीमी-धीमी आवाज से झोंपड़ी की खामोशी काँप रही थी। गाँव में लोग शाम होते ही खा-पीकर सो जाते हैं। बाहर घोड़ा हिनहिना उठा। रामू ने लालटेन उठाकर घोड़े को देखना चाहा कि अचानक उसकी आँखें रूपिया की साड़ी पर अटक गई। वह आँखें फाड़े कुछ देर रूपिया को देखता रहा, और रूपिया जमीन पर औंधी पड़ी सुबुकती रही। बायें हाथ में बत्ती लिये रामू ने दाहिने हाथ से रूपिया का कँधा पकड़कर उठाया। रामू ने देखा रूपिया के दोनों गाल आँसू और मिट्टी से पुते हैं और रोते-रोते उसे हिचकी आ रही है। रामू ने जरा गम्भीर होकर अपने होटों को दाँतों से दाबते हुए पूछा—"यह खून कहाँ से आया?"

"..................."

"बोलती क्यों नहीं हो?"

"छोटा टाकुर मुझे रोज छेड़ा करता था और आज उसने जबरदस्ती मेरी...।"

रूपिया इससे आगे कुछ भी नहीं बोल सकी। रामू के हाथ का लालटेन वहीं गिर गया। झोंपड़ी में अन्धकार छा गया। रामू को लगा—चारों ओर रूपिया की खून से लथपथ साड़ी बिखरी पड़ी है, चारों ओर छोटे

ठाकुर के ज़हरीले दाँत हँस रहे हैं, चमक रहे हैं। रामू के सामने रूपिया की वह तस्वीर आगई जब उसने हवेली जाने से इन्कार किया था और फूलकर घर के भीतर चली गई थी। रामू को अपना ठहाका भी याद आया जो आज उसके गले में अटक रहा था और अभी वह घुट-घुटकर ऐंठ रहा था भीतर-ही-भीतर :

'छोटे ठाकुर ने रूपिया पर बलात्कार किया है।

'रूपिया की साड़ी खून से लथपथ है।

'रूपिया की इज्जत बर्बाद कर दी गई।

''रामू लुट गया। रामू जो मशहूर डाकू है। रामू जो खून से खेलता-फिरता है।

'रामू जिसे ठाकुर ने डाकू बनाया और आज उसी ठाकुर के बेटे ने रूपिया की इज्जत लूट ली। अब रूपिया का ब्याह वह नहीं कर सकता। लोग जान जायेंगे, लोग हँसेंगे, और रूपिया घुल-घुलकर मरेगी।

'नहीं...रामू डाकू है। रामू खून से ही खेलता है। उसकी बहन अपनी इज्ज़त गँवाकर ज़िन्दा नहीं रह सकती। रूपिया का जिन्दा रहना रामू के खूनी होने पर धब्बा लगना है। बाहर जोर से बादल गरज उठा। अब उसके साथी आते ही होंगे। और उस समय तक रूपिया रोती ही रहेगी। नहीं, रूपिया नहीं रो सकती। रूपिया नहीं रोयेगी। रोने वालों के लिए इस दुनिया में कोई स्थान नहीं। आँसू बहाने वालों को मिट जाना चाहिए, मर जाना चाहिए। दुनिया की तरक्की खून बहाने वालों पर मुनस्सर है। आज के समाज में खूनी ही जिन्दा रह सकता है। रूपिया को कोई हक नहीं जिन्दा रहने का।'

और तब रामू ने कटार निकालकर रूपिया के सीने में घोंप दिया। एक हल्की-सी आह निकली और रूपिया खामोश होगई। रामू ठेहुने के बल बैठा रूपिया को बाँह का सहारा दिये रहा। अन्धकार में कुछ भी

दिखाई नहीं दे रहा था। चारों ओर अन्धकार! नादी पर गायें टकरा उटतीं और उनकी गरदन की घण्टी टनटना उठती। रामू ने रूपिया को वहीं लिटा दिया। बाहर कुछ लोगों के आने की आवाज सुनाई दी। रामू बाहर आगया जब उसके सभी साथी जुट गये तो रामू ने खूनी आवाज में कहा—"जानते हो आज कहाँ चलना है? नहीं जानते! आज हम लोग ठाकुर के यहाँ डाका डालेंगे।"

"ठाकुर के यहाँ?" एक नौजवान ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, आज गुरुदक्षिणा चुकानी है। ठाकुर ने हम लोगों को यह राह बताई और आज उसकी बताई राह उसी के यहाँ लिये जा रही है।" रामू बहुत गम्भीर होकर बोल रहा था। उसके साथियों ने महसूस किया कि रामू आज विचित्र ढंग से बातें कर रहा है। एक नौजवान ने हिम्मत करके कहना चाहा—

"लेकिन..."

"चुप रहो, मेरे साथ चलना चाहते हो तो 'लेकिन' को ताक पर रख दो।" बेचारा नौजवान वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि रामू ने बीच में ही डपट दिया। सब-के-सब तैयार होगये। रामू ने अन्धकार में अपनी झोंपड़ी को खड़ी देखा, कुछ देर तक देखता रहा और फिर सबके साथ हवेली की ओर चल दिया।

ठाकुर साहब खाना खाकर सोने चले गये थे। रामू के साथियों ने हवेली को घेर लिया। किसी को कुछ पता नहीं चला। अचानक ही रामू अपने दस साथियों के साथ हवेली में घुस गया। नौकर सुगबुगाये लेकिन बन्दूक की नाली देखकर सबके सब खामोश रह गये। छोटे ठाकुर बरामदे में ही सो रहे थे, खुली हवा में। रामू उनके पास पहुँचा तो वे अचानक चिल्ला पड़े।

रामू ने अपनी कटार निकाल ली—वह कटार जो कुछ देर पहले रूपिया

का पाक खून पी चुकी थी। कटार देखते ही छोटे ठाकुर का होश गायब हो-गया। लेकिन वे भी तो आखिर खानदानी ठाकुर थे। बगल में पड़ी गुप्ती खींच ली और रामू से गुँथ गये। छोटे ठाकुर जान पर खेल रहे थे। उन्होंने पूरी ताकत लगाकर रामू को पीछे ढकेल दिया और गुप्ती फेंककर वार किया। वार से बचने के लिए रामू झुका लेकिन गुप्ती उसके गाल में चुभ गई। रामू ने हाथ से अपने गाल को टटोलकर देखा तो उसकी तल-हथी खून से लथपथ हो रही थी। अब रामू और भी खूँखार होगया और शेर की तरह छोटे ठाकुर पर टूट पड़ा। छोटे ठाकुर अपनी मृत्यु निकट देखकर चीख पड़े। लेकिन अभी उनके मुँह से पूरी चीख निकल भी नहीं पाई थी कि रामू की कटार उनके कलेजे में घुस गई और छोटे ठाकुर वहीं लुढ़क गये।

ठाकुर साहब अपनी बीबी से गुफ्तगू कर रहे थे। चीत्कार जो उनके कान में पहुँची तो हड़बड़ाकर बाहर दौड़े लेकिन दरवाजे पर तीन आदमी बन्दूक ताने खड़े थे। ठाकुर साहब को वहीं कँपकँपी आगई। रामू उनके पास आया और खूनी आँखों से घूरता हुआ बोला—

"ठाकुर साहब, आज मैं गुरुदक्षिणा चुकाने आया हूँ। तिजोरी की चाबी कहाँ है?...उधर क्या देख रहे हैं?" ठाकुर साहब बरामदे की ओर झाँक रहे थे। रामू ने उसी तरह गम्भीर खूनी आवाज में कहा—"तुम्हारे साहबजादे ने रूपिया की इज्जत बिगाड़ी है इसलिए अब न तो तुम्हारा साहबजादा ही जिन्दा है और न मेरी रूपिया ही। हम दोनों का पलरा बराबर है। चाभी निकालो जल्दी, वरना सबों की हत्या कर दूँगा और फिर तुम्हारे खानदान में पानी देने वाला भी नहीं बचा रहेगा।"

ठाकुर साहब ने डर के मारे चाभी का गुच्छा चट निकालकर दे दिया। रामू ने गुच्छे को एक साथी के हवाले किया और ठाकुर साहब को घिराता हुआ बोला—

"आज से मैं गाँव छोड़ रहा हूँ। लेकिन खबरदार, अगर पुलिस को मेरी कोई भी बात मालूम हुई तो आपको जिन्दा जला दूँगा। आज से न तो मैं इस गाँव में कदम रखूँगा और न आप किसी से मेरे या मेरे साथियों के बारे में जिक्र करेंगे। आप जानते हैं कि मुझे जिन्दगी का कोई मोह नहीं लेकिन आपका समूचा परिवार अभी कायम है। अगर आपने मेरी बात पर गौर नहीं किया तो आप जानिए।" और इसके बाद ठाकुर साहब की पूरी सम्पत्ति लूटकर रामू अपने साथियों सहित चलता बना।

ठाकुर साहब ने भी अपनी अमुखर और अव्यक्त प्रतिज्ञा का पूरा निर्वाह किया। पुलिस ने जिले-भर के निरपराध गुण्डों को जेल में भर दिया। और रामू उसके बाद ही सीधे कलकत्ते रवाना होगया।

: १२ :

समय या सीमा की दूरी से तन का दुराव तो हो जाता है लेकिन साथ ही मन का तनाव भी बढ़ जाता है। विस्मृति की मंजिल स्मृति की राह से ही पानी होती है। और इन्सान ऐसा है कि मुहब्बत का द्वार बन्द करके घृणा को अपने पास ही रोक लेता है। और घृणा की रफ़्तार मुहब्बत से कहीं तेज है। बेचारी मुहब्बत, कोमल, मधुर, उदार! नफ़रत बाज़ी मार लेती है और मुहब्बत का अवरोध इन्सान को हैवान बना देता है। मुहब्बत और नफ़रत जिन्दगी की गाड़ी के दो चक्के हैं और स्मृति-विस्मृति दो घोड़े। दोनों एक-दूसरे के पूरक, सहगामी।...भुवन तोल रहा था रामू की जिन्दगी को, उसकी घटनाओं को, उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओं को।

रामू कलकत्ते आकर कुछ दिनों तक योंही भटकता रहा। यहाँ आते ही वह निश्चिन्त-सा होगया। इतने बड़े शहर में भला कौन उसे पहचान सकता है। यहाँ तो लोग नहीं रहते हैं बल्कि लोगों के झुण्ड रहते हैं। यहाँ तो भाईचारा का नाता भी नहीं है कि दुश्मनी पनप सके। यहाँ तो व्यापार होता है। हर चीज़ का व्यापार होता है जैसे लोहा, कपड़ा, मोटर, दवा, अस्मत आदि-आदि।...रामू शहर तो आगया लेकिन उसकी समझ में यह नहीं आया कि आखिर कौन-सा काम करे, कई रोज तो वह बड़े-बड़े मकानों को ही देखता रह गया। क्या व्यापार ऐसी चीज़ है कि इतने बड़े-बड़े मकान बनवाये जा सकते हैं!

कहीं जगह नहीं मिलने के कारण वह हावड़ा में ही एक कोठरी लेकर टिक गया। उसके पास रुपये काफ़ी थे लेकिन ऐसे मिज़ाजवालों के लिए

कोई चीज काफ़ी नहीं हुआ करती। कभी तो उसका विचार होता कि बचे हुए रुपये से एक होटल खोल दे और कभी सोचता कि वह भी एक व्यापार करे जिससे कि बड़े-बड़े मकान बनवा सके और कभी सोचता कि वह कुछ भी नहीं करे। उसकी इच्छा होती कि वह कुछ करे लेकिन उसके गाल पर का कटा घाव जैसे राहू बनकर सारी कल्पनाएँ निगल जाता। खैरी इलाके का मशहूर डाकू आज गलियों का चक्कर लगाता-फिरता है। कभी-कभी तो स्वयं ही रामू को लगता कि वह रामू नहीं है—रामू ऐसा नहीं था। लेकिन खैरी में भी वह रामू डाकू के नाम से मशहूर नहीं था—रामू पहलवान के नाम से मशहूर था। और कलकत्ते में तो एक-से-एक पहलवान रहते होंगे जिनके सामने बड़े-बड़े दाव-पेंच हवा हो जायँ।

रामू के गाल का घाव अभी तक भरा नहीं था। भीड़-भाड़ में वह कभी-कभी बिल्कुल ही भूल जाता कि उसके किसी अंग पर घाव भी है। लेकिन जब कभी वह अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी को टटोलता तो अचानक ही जख्म ताजा हो आता। 'आह,...आज रूपिया नहीं रही। उसकी वह नन्हीं-सी गुड़िया चली गई...रूपिया, रामू की बहन, उसकी अपनी बहन, और तब रामू पागल की तरह बावला हो जाता। वह चाहता कि रूपिया मर जाय, खैरी मर जाय, ठाकुर मर जाय लेकिन सभी जिन्दा रहते, सभी हँसते होते, सभी नाचते होते। केवल रूपिया रोती, केवल रूपिया देखती, गीली-गीली आँखों से देखती जैसे पूछ रही हो—

भइया, तुम ने मेरी हत्या कर दी ? तुम ने ?

और तब रामू और पागल हो जाता, वह भागता, दौड़ता, गीत गाने लगता लेकिन रूपिया कहीं भी साथ नहीं छोड़ती, जैसे कन्धा पकड़कर झूलती चली आती।

एक रोज यों-ही रामू लेक रोड झील के किनारे बैठा-बैठा अपने भविष्य की योजनाएँ बना रहा था कि उसका दाहिना हाथ अचानक ही गाल के

घाव पर चला गया। उसे लगा कि वह पतित है, वह जानवर है। उसने बहन की हत्या की है। अपनी छोटी-सी दूअर बहन की, जिसे वह प्यार करता था, जिसे वह सीने से लगाकर सोता था वह बहन अब नहीं है, रूपिया नहीं है और वह अपना भविष्य बनाना चाहता है। व्यापार करना चाहता है।

सामने झील की छाती पर अन्धकार फैला था। किनारे-किनारे बिजली के बल्ब जल रहे थे जिनकी रोशनी पानी को छूती और झील का काला पानी सिहर उठता, भागने लगता जैसे वह रोशनी से नफ़रत करता हो। जैसे अन्धकार ही काले पानी का उपास्य हो। अन्धकार और झील का पानी दोनों बेजान, दोनों शैतान, दोनों खौफ़नाक और यह टिमटिमाते हुए बिजली के बल्ब, बेकार, जानदार होकर भी जैसे आँसू बहा रहे हों, रो रहे हों। रामू को लगा यह बिजली के बल्ब उस पर व्यंग कर रहे हैं। रोशनी पानी को छूती, पानी सिहर उठता और रूपिया खिलखिलाकर हँस पड़ती, छोटे ठाकुर का भयंकर जबड़ा उस हँसी को निगल जाता। रूपिया चीत्कार कर उठती। रूपिया मजबूर थी। नहीं-नहीं रूपिया निर्दोष है, मजबूर है। उसने कोई पाप नहीं किया। उसने कोई जुर्म नहीं किया, वह तो छटपटा रही है शैतान के जबड़े में, वह तो चिल्ला रही है...और रामू उसके सीने में कटार भोंक रहा है...रामू हत्यारा है, रामू ने अपनी निर्दोष बहन की हत्या की और रामू अपना भविष्य बनाने जा रहा है, रामू नीच है, रामू जानवर है, ठीक छोटे ठाकुर की तरह रामू भी शैतान......और तब रामू अधिक देर तक वहाँ बैठ नहीं सका। वह भागा, बहुत तेजी से भागा। लेकिन कहाँ जाय, राह तो खत्म ही नहीं होती। तो क्या उसकी जिन्दगी यों-ही भागते-भागते खत्म हो-जायगी ? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं जिससे वह रूपिया को भुला दे। रामू को लगा कि उसे आत्महत्या कर लेनी चाहिए। उसने कमर से कटार निकाल ली, वह मर जायगा, उसे जिन्दा रहने का कोई हक नहीं। लेकिन

वह क्यों मरे ? नहीं-नहीं, इन शैतानों को मरना होगा। इन ठाकुरों को मरना होगा। इन रईसों को मरना होगा जो दूसरों की इज्जत को ठीकरा समझते हैं कि जब चाहा मसल दिया। अगर यह स्वयं नहीं मरते तो रामू उन्हें मारेगा। यह समाज के कोढ़ हैं। कलंक हैं,...हाँ तभी रूपिया का कर्ज अदा हो सकता है...।

रामू यही सब सोचता एक होटल में दाखिल होगया। अब वह जिन्दा रहना चाहता है। उसने सुना था कि शराब पीने के बाद आदमी कुछ देर तक जिन्दा रह सकता है। जिस होटल में वह घुसा, वह होटल भी अजीब तिलस्म की तरह लगा। लेकिन कोई बात नहीं, रामू तो स्वयं तिलस्मी है। सामने हॉल के एक कोने मे दुबला-पतला काला-कलूटा मैनेजर एक ऊँची टेबुल पर झुका हुआ बैठा था। वह मैनेजर न तो जवान था, न बूढ़ा और न अधेड़। आँखें धँसी हुई और सफ़ा चट मूँछें लिये मुँह में बीड़ी लगाये आने वालों को घूरता। उसके घूरने में स्वागत का भाव तो कतई नहीं था। वह सबों को अजीब जिज्ञासा और शंका की नजर से घूरता रामू सीधे उसके पास पहुँचा और उसे घूरता हुआ खड़ा होगया। मैनेजर इस असाधारण आदमी को देखकर चौंका फिर गरदन टेढ़ी करके पूछा—

"कहिए क्या हुक्म है ?"

"मुझे शराब चाहिए एक बोतल—अच्छी शराब," और रामू पास की टेबल पर बैठने को मुड़ा ही था कि मैनेजर ने रामू से जरा मुस्कराते हुए व्यंग से पूछा—

"अच्छी शराब के पैसे भी काफ़ी अच्छे लगते हैं।"

"तू शराब भेजेगा या पैसे की फ़ोटो उतारेगा ?"

रामू उलटते ही गुर्रा उठा। मैनेजर सहम गया। बहुत रात तक वहीं बैठा-बैठा रामू शराब पीता रहा। सामने ही दीवाल पर घड़ी का पेन्डुलम डोलता जाता। रामू उसे देखता रहा, पीता रहा और सिगरेट का धुआँ

उड़ाता रहा। बीच-बीच में मैनेजर उसे घूरता कि कहाँ से शैतान आगया। उसे शक था कि यह खूँखार आदमी पैसे नहीं देगा। और जब रामू उसकी ओर देख देता तो मैनेजर दूसरी तरफ़ देखने लगता।

शराब खत्म होगई। रामू को लगा जैसे वह लहरों पर उतर रहा है, कभी ऊपर कभी नीचे। वह कुछ भी सोचता तो तुरन्त भूल जाता। जैसे लहर का झोंका आया और किनारे पर पटक गया, फिर दूसरा झोंका आया और मँझधार में ले गया। वह अपने मस्तिष्क को काबू में रखने की कोशिश करता। वह मैनेजर को देखता, उसे पहचान लेता और सोचता कि उसे अभी होश है। रामू इसी स्थिति में था कि चार आदमियों ने होटल में प्रवेश किया। रामू ने देखा—आगे-आगे एक नौजवान है, करीब बीस साल का, जो देखने में शरीफ़ और साधारण-सा आदमी लग रहा था। वह पायजामे पर मलमल का कुर्ता डाले था और हाथ में एक छोटी-सी हंटरनुमा छड़ी थी जिसे बाएँ हाथ की तलहथी पर वह धीरे-धीरे पटकता रामू की ही टेबल के पास आकर खड़ा होगया। रामू ने उसे गौर से देखा, नौजवान मुस्करा रहा था। इस समय रामू की इच्छा हो रही थी कि वह किसी से बातें करे, किसी के साथ हँसे, झगड़े, रोये।

नौजवान ने ज़रा शेखी से पूछा—

"क्या हम लोग इस टेबुल पर बैठ सकते हैं?"

"ज़रूर!" रामू ने संक्षिप्त उत्तर दे दिया और बैठे-बैठे ही मैनेजर से पूछा कि कितने पैसे हुए?

नौजवान और कोई नहीं बल्कि मदन ही था।

मदन ने जेब से ताश निकालते हुए पूछा।

"फ्लाश खेलिएगा?"

रामू कुछ देर तक खामोशी से मदन को घूरता रहा और अनजाने में ही बोल उठा—

"जरूर !" रामू मैनेजर को पैसे दे रहा था। रामू जुआ नहीं जानता था, दो-तीन बार उसने खेलने का प्रयत्न तो अवश्य किया था लेकिन उसकी गहराई और चालबाजी तक उतरना जरा कठिन काम है सो रामू बाजी पर बाजी हारता गया और अन्त में जब काफ़ी पैसे हार चुका तो उसने खेलना बन्द कर दिया। रात ढलने लग गई थी। मदन भी अपने साथियों से विदा लेकर चलता बना। आज उसने काफ़ी रुपये बनाये थे।

रामू कुछ देर तक योंही बैठा रहा कि अचानक उसे होश आया। शहर का एक मामूली लौण्डा उसे ठगकर भाग निकला। रामू ने कितनों की गरदन उमेट दी थी, कितनों की कलाई तोड़ दी थी और एक लौण्डे की यह मजाल की उसे बेवकूफ़ बनाकर निकल जाय। रामू तेज़ी से उठा और होटल से बाहर होगया। मदन अभी दूर नहीं गया था। पास पहुँचते ही रामू ने उसकी गरदन पकड़ ली और हारे हुए पैसे माँगे। पहले तो मदन हिचका लेकिन गरदन की बेबसी महसूसकर चुपचाप सभी पैसे लौटा दिये। कल फिर रामू उसी होटल में पहुँचा। मदन भी आया। पहले तो रामू ने समझा कि यह छोकरा कुछ बोलेगा और यदि बोलेगा तो रामू उसकी गरदन तोड़ देगा लेकिन रामू के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उसने आते ही फिर वही आज्ञा माँगी 'क्या मैं बैठ सकता हूँ,' तो रामू अपने-आप झेंप गया। इसके बाद दोनों में परिचय हुआ। घनिष्ठता हुई, विश्वास आया और मित्रता होगई—मित्रता भी ऐसी हुई कि दोनों साथ ही रहने लगे।

मदन कुछ विशेष पढ़ा-लिखा आदमी नहीं था। फिर भी वह रईसों की महफ़िल में ही अक्सर रहता, पढ़े-लिखे आदमियों से मिलता, आवारों से उलझता, गोया वह कहीं भी खप सकता था। लेकिन इसके अलावा भी उसका अपना एक खास व्यक्तित्व था—एक खास चरित्र था जो उसकी सादगी के पर्दे से ढँका रहता। पहली भेंट में कोई भी उसे गलत समझ

सकता था। रामू को भी थोड़ा भ्रम हुआ। मदन शरीर से ज़रा कमज़ोर आदमी था लेकिन दिमाग़ का तेज़। जुए में उससे कोई भी नहीं जीत सकता था। दोनों में पटरी बैठ गई। लेकिन रामू रईसों से नफ़रत करता। जब एक रोज़ रामू ने मदन को मना किया कि वह रईसों के पास न जाय तो मदन ने हँसते हुए कहा—

"पागल हो ? अरे, मैं तो उन्हें बर्बाद करने उनके पास जाता हूँ—जुआ खेलने। मुझे इन आदमखोरों से नफ़रत है और इसीलिए इनके साथ रहता भी हूँ।" लेकिन रामू इस रास्ते पर सहमत नहीं हुआ। उसने तय किया कि वह रईसों के यहाँ डाका डालेगा। राह चलते रुपये छीन लेगा और मदन को भी इसमें साथ देना होगा। मदन की तो जैसे जान आगई। वह झट तैयार होगया।

डाके पर डाके पड़ने लगे। समय कटता गया। रामू की छाती ठण्डी होती रही लेकिन प्यास भी बढ़ती ही गई। इसी तरह तीन वर्ष बीत गए कि एक रात ऐसी घटना घट गई जिसके कारण रामू और मदन को कलकत्ता छोड़ना पड़ा।

जब से वह मदन के साथ रहने लगा, समय काटने के लिए बाईजी के कोठे पर भी जाने लगा। लक्खी को उसने पहली बार सोनागाछी में ही देखा था। उसकी एक और बड़ी बहन थी जिसका नाम था विमलेश्वरी। रामू उसे विमला कहकर पुकारता। प्रायः रोज़ ही रात को किसी-न-किसी समय महफ़िल जमती, गाने होते, शराब चलती और भोर होते-होते कोठा खाली हो जाता। लक्खी उस समय तेरह साल की थी जब वह आकस्मिक घटना घटी। उस कोठे पर शहर का एक पुलिस अफ़सर भी आता। रामू को रईसों के साथ-साथ पुलिस से भी नफ़रत थी। वह अच्छी तरह जानता था कि यह पुलिस-विभाग भी गरीबों को ही सताने के लिए खोला

गया है। बड़े आदमी जो पाप चाहें खुले-आम कर सकते हैं—कोई रुकावट नहीं।

पुलिस अफ़सर का उस कोठे पर आना रामू को अच्छा नहीं लगता एक रोज़ वह काफ़ी रात गए मदन के साथ कोठे पर दाखिल हुआ तो विमला की अम्मां ने जो-कुछ भी बताया उसे सुनकर रामू तमतमा उठा। इधर कुछ दिनों से वह अफ़सर लक्खी पर आँखें गड़ाए था—उस लक्खी पर जो अभी कुल तेरह साल की थी। उसकी अम्मां ने बताया कि वह पुलिस अफ़सर धमकी दे गया है कि अगर लक्खी कल रात को उसके हाथ नहीं सौंपी गई तो वह उन लोगों का रहना मुश्किल कर देगा। रामू जानवर नहीं था वह कोठे पर जाता, शराब पीता, गाना सुनता। नाच देखता, रुपये लुटाता और बस! इसके आगे उसने कभी कदम नहीं उठाया। रामू बहादुर था, उसने उसी समय घोषणा कर दी कि कल वह पुलिस अफ़सर का खून कर देगा। विमला कुछ हद तक उस अफ़सर से मुहब्बत करने लग गई थी। विमला जानती थी रामू जो कहता है उसे कर डालने में उसे कोई हिचक नहीं होती। उसने रामू से आरज़ू की भीख माँगी और अन्त में अपना दिल खोलकर रख दिया। लेकिन रामू का खून खौल रहा था। दूसरे दिन वह शाम से ही कोठे पर डट गया। विमला परेशान थी और अन्त में अफ़सर महोदय आये। रामू कुछ देर तक उन्हें घूरता रहा और फिर होंठ काटते हुए बोला—

"तुम लक्खी को चाहते हो?"

"तुम्हें इससे मतलब?" अफ़सर ने अपना गुस्सा दिखाया भी नहीं था कि रामू उछलकर उसकी छाती पर जा बैठा। विमला दौड़ी हुई आई जब पुलिस अफ़सर रामू की कटार से बचने के लिए उलझ रहा था।

आखिर पुलिस अफ़सर मरा नहीं, विमला उसकी देह पर लेट गई थी शोर-गुल सुनकर नीचे से भी कुछ लोग आ जुटे थे। सब लोग मुँह बाए देखते रहे और रामू वहाँ से चल दिया।

लक्खी अपनी अम्मां के साथ रामू के घर पर चली आई थी। उस रात मदन भी वहीं था। रामू के आते ही जब यह पता चला कि अफ़सर घायल हो गया है तो लक्खी की अम्मां के आग्रह से चारों आदमी उसी रात बनारस के लिए रवाना होगए। और तब से रामू, मदन, लक्खी और लक्खी की अम्मां बनारस के ही बाशिन्दा होगए।

: १३ :

परोपकार भी सरोकार बढ़ाने के लिए ही किया जाता है। भले, आदमी का ध्यान इस सरोकार की ओर न भी रहे लेकिन भावना या वृत्ति यही होती है जो कुछ करने के लिए प्रेरणा देती है। और सरोकार की अन्तिम सीमा पर मुहब्बत का किला होता है जिसे एक बार दखल कर लेने पर छोड़ा नहीं जाता। हर आदमी के भीतर यही भावना है और देवता के भीतर भी। उपकार का आभार देवता भी मानते हैं, नेता भी मानते हैं और आदमी भी। और आभार लादकर अधिकार जताने का क्रम चल पड़ता है। साधारणतः हम एक धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म का प्रचार करते हैं और बाद में स्वयं दूसरे धर्म के देवता बन बैठते हैं। हम एक हिंसक देश की प्रगति रोकने के लिए दूसरे देश का साथ देते हैं और सफल होने पर हिंसक देश में शान्ति कायम रखने का अधिकार खोजने लगते हैं। हम किसी अबला को दुष्टों के हाथ से उबार लेते हैं और बाद में खुद पर आभार का अधिकार सवार हो जाता है। निस्सन्देह इस प्रवृत्ति के भी भेद हैं लेकिन यह प्रवृत्ति है और खूब है... भुवन को लगा कि रामू भी माटी पानी का ही बना हुआ एक सजीव पुतला है।

बनारस आने के बाद लक्खी को मजबूरन अपना नाचने-गाने का पेशा शुरू कर देना पड़ा। धीरे-धीरे शहर में नाम फैलने लगा। रईसों की, बाढ़ चढ़ाव पर आगई। लक्खी खूबसूरत थी, जवानी से आबद्ध हो रही थी, तमीजदार थी, सुरीली थी और मनचलों के दिल में मोह का भ्रम पैदा कर देने वाली एक सजीव सत्ता थी। लक्खी का नाम चल निकला।

रामू और मदन भी एक मकान लेकर रहने लगे, वही मकान ही उनका

अड्डा बना। धीरे-धीरे रामू बनारस का मशहूर गुण्डा होगया। लक्खी के यहाँ रात को एक बार निश्चित रूप से जाना रामू और मदन का फ़र्ज हो-गया। लेकिन रामू जानता था कि लक्खी के यहाँ पैसे देने होते हैं और इस काम में भी वह किसी से पीछे नहीं था। लक्खी के लिए भी इस शहर में कोई अपना था तो वह रामू ही था। रामू अगर एक रोज भी लक्खी के यहाँ नहीं जाता तो लगता कि उससे आज की रात काटे नहीं कटेगी। रामू मुहब्बत करने लग गया।

लेकिन लक्खी अनजान थी।

इधर एक वर्ष से दारोग़ाजी लक्खी के यहाँ आने लगे थे! रामू को यह बात अच्छी नहीं लगती। लेकिन यह वेश्या का कोठा है जहाँ सभी पैसे वाले आ सकते हैं। रामू कुछ दिनों तक खामोश रहा लेकिन उसे पुलिस वालों से नफ़रत थी, लक्खी की बड़ी बहन ने भी उसे धोखा दिया। क्या जीवन के इतिहास में एक ही घटना बार-बार दुहराई जाती है? क्या लक्खी नहीं जानती कि रामू पुलिस वालों से नफ़रत करता है? क्या लक्खी को पता नहीं है कि रामू ने ही उसकी जान बचाई और बनारस की ज़िन्दगी दी? क्या लक्खी नहीं जानती कि कलकत्ते में एक पुलिस अफ़सर ने ही उसकी······

और एक रोज रामू ने लक्खी से कह भी दिया कि वह उस दारोग़ा का आना-जाना पसन्द नहीं करता। लेकिन लक्खी केवल बच्ची की तरह हँसकर रह गई। वह कर ही क्या सकती थी। अगर उसे अपने पेशे का ख्याल है तो सबों का ख्याल करना होगा; भले वह दारोग़ा हो, रामू हो, विनोद विद्यार्थी हो या भगलुआ चमार हो। लक्खी कुछ भी नही बोली और बोलती भी क्या?

साल में एक-दो बार रामू कलकत्ते जाता और लक्खी की बहन से चुप-चाप मिलकर चला आता। कलकत्ते वाला पुलिस अफ़सर भी तब तक वहीं था। वह विमला से रोज मिलता।

इस बार जब वह कलकत्ते गया तो पता लगा कि वह पुलिस अफ़सर

लगभग एक वर्ष से विमला के पास आया भी नहीं। विमला घुल-घुलकर मरने लगी। उसकी उमर ढल चुकी थी इसलिए बाजार भी मन्दा पड़ गया। अचानक ही विमला को भयंकर गुप्त रोग होगया और दवा के अभाव में वह तड़प-तड़पकर मर गई। उसी बार कलकत्ते से लौटते समय भुवन से गाड़ी में उसकी भेंट हुई थी।

कलकत्ते से लौटने के बाद रामू और भी खूँखार होगया। उसकी नफ़रत और भी तीव्र होगई। वह सोचता कि लक्खी पर उसका पूरा अधिकार है। लक्खी से वह मुहब्बत करता है, केवल मुहब्बत करता है, और इसके बदले वह मुहब्बत ही चाहता भी है और कुछ नहीं चाहता। लेकिन ऐसा कभी-कभी होता है कि मुहब्बत जवाब देती है और वह भी बिना पूछे। रामू ने लक्खी को कई बार मना किया कि वह दारोगा को टाल दिया करे अगर वह पैसा चाहती है तो रामू से माँग ले। और उसने बिना माँगे ही रुपये लुटाना शुरू भी कर दिया, लेकिन न जाने क्यों लक्खी पर कोई असर नहीं पड़ा। इधर कई बार वह दारोग़ा के साथ गंगा में बजड़े की हवा भी खा आई है और तब एक दिन रामू का खून खौल उठा।

रामू को पता लगा कि आज रात को लक्खी फिर दारोग़ा के साथ बजड़े पर जायगी। रामू के लिए अब और बर्दाश्त करना मुश्किल होगया। आज तक उसने किसी भी वैरी को क्षमा नहीं किया है और न कहीं हार ही मानी है। उसने लक्खी को कई बार मना किया है कि वह दारोग़ा से अपना सम्बन्ध तोड़ ले। कल ही उसने लक्खी को आदेश दिया था और लक्खी ने वादा किया कि अब वह कभी भी दारोग़ा के साथ बाहर नहीं जाएगी। लक्खी फ़रेब करती है क्योंकि कई बार उसने रामू को समझा-बुझा दिया है कि वह दारोग़ा को बिल्कुल पसन्द नहीं करती। लक्खी कई बार दारोगा के साथ बाहर गई है। लक्खी कई बार कोठे पर ही दारोगा से मिल चुकी है लेकिन रामू ने जब कभी भी पूछा है तो वह नकार गई

है। लक्खी ने साफ़-साफ़ कह दिया है कि फलाँ रोज़ दारोग़ा नहीं आया था जबकि रामू स्वयं देख चुका था दारोग़ा को कोठे पर चढ़ते।

रामू अपनी खूनी प्यास रोक नहीं सका। उसका धर्म ही प्रतिकार लेना है। लक्खी झूठ बोलती है, धोखा देती है, स्वांग रचती है। अब रामू उसे नहीं माफ़ कर सकता। इस तरह वह दूसरों को भी धोखा देगी—दारोग़ा को धोखा देगी, अपने-आपको धोखा देगी। नहीं, लक्खी अब जिन्दा नहीं रह सकती। रामू ने अपनी नन्ही-सी गुड़िया की भी हत्या कर डाली है। लक्खी तो एक वेश्या है—मक्कार औरत!

रामू लक्खी के कोठे पर जाने वाली सीढ़ी की ओट में छिपा रहा, चारों तरफ़ आसपास अन्धकार जमा था। लक्खी ज्यों ही सज-धजकर बाहर निकलेगी कि रामू उसके सीने में छुरा भोंक देगा। वह सामने जाकर भी मार सकता है लेकिन प्रकाश में लक्खी के रूप से शायद मोह हो-जाए। रूपिया की भी उसने अन्धकार में ही हत्या की थी और महसूस किया था कि गरम-गरम खून ही बह रहा है; उसका मोह बह रहा है। और आज वह लक्खी की हत्या करेगा कि रहा-सहा बन्धन भी गल जाए।

लक्खी कमरे से निकली। रामू ने प्रकाश में उसका जगमगाता रूप देखा। लेकिन आज उसकी रग-रग में घृणा दौड़ गई। ईर्ष्या से रामू का मस्तिष्क जल उठा। वह दीवाल से चिपक गया कि कोई देख न ले।

सीढ़ी पर आहट आई। लक्खी आ रही थी। रामू सतर्क होगया। छुरा उसके हाथ में था। अन्धकार भी बिल्कुल सम्हल कर, सतर्क होकर, सघन होकर जमा था। ज्यों-ही वह आहट समीप आई कि रामू की मुट्ठियों में छुरा जकड़ गया—उठा और एक हल्की-सी चीख निकली। रामू घबड़ा गया, "यह तो लक्खी की अम्मां है।"

रामू कुछ सोच नहीं पाया और धड़-धड़ाता हुआ सीढ़ी से उतरकर बाहर होगया...।

: १४ :

भुवन ने महसूस किया कि रामू एक जिन्दा भूत है जो समाज की पिछली कुरीतियों की जीवित छाया बनकर वर्तमान की धाँधली को चुनौती देता फिर रहा है। रामू खूँख्वार है, रामू हत्यारा है, रामू गुण्डा है लेकिन रामू की खूँख्वारी में, रामू की हिंसक-वृत्ति में, रामू की कुत्सित वृत्ति में समाज का यथार्थ ही प्राण बनकर डोल रहा है, इसीलिए रामू जिन्दा है। और रामू मरकर भी जिन्दा रहेगा जब तक कि आज का समाज जिन्दा है, ठाकुर जिन्दा है, पुलिस अफ़सर जिन्दा है, लक्खी जिन्दा है। रामू कुछ नहीं है। रामू आज के समाज का प्रतिकार है। रामू ग्वाला रहता, रूपिया का भाई रहता, खैरी का लट पहलवान रहता अगर ठाकुर मर गया होता, लक्खी मर गयी होती। रामू पाक है, रामू इन्सान है। वह एक ऐसा इन्सान है जो चुप नहीं रह सकता, जिसमें प्रतिशोध की, मुहब्बत की, क्षोभ की, नफ़रत की एक भयंकर आग जला करती है।...भुवन ने लम्बी साँस छोड़ते हुए रामू को देखा जो सींखचों के बाहर सेल की दीवाल को देखने की कोशिश कर रहा था। और वह दीवाल, अन्धकार में खामोश खड़ी थी जैसे उस पर कोई असर नहीं। बहुत देर तक कोई किसी से भी नहीं बोला। बाहर अन्धकार हल्का हो रहा था। पत्थर की दीवाल साफ़ होती जा रही थी जैसे वह अब खुल रही हो, कुछ कह रही हो। छोटे-से आकाश में तारे झिलमिला रहे थे—बुझते दीप की तरह। बादल छट चुका था। रामू ने एक सिगरेट सुलगाई और उसे पीता रहा, पीता रहा कि अचानक ही बोल उठा—

"भुवन मेरी कहानी पर कुछ सोचने की जरूरत नहीं, क्योंकि मैं अकेला ही अपने जैसा नहीं हूँ, बहुतों जैसा मैं हूँ और मेरे जैसे बहुत हैं। हाँ, चाहो तो मुझे याद रख सकते हो। पता नहीं, अब तुम से भेंट हो सकेगी या नहीं, इसलिए इतना कह दूँ कि मैं जो-कुछ सोचता हूँ वह कर नहीं पाता और जो-कुछ करता हूँ उसे सोच नहीं पाता। और इसकी कोई जरूरत भी नहीं है। रामू को याद रखना जो एक खूनी है, शराबी है, जुआरी है लेकिन मक्कार नहीं है, मुर्दा नहीं है, नपुंसक नहीं है।" रामू के कथन में कोई कृत्रिमता नहीं थी, कोई अर्थ नहीं था। वह योंही सिगरेट का धुआँ निकालता धराधर बोलता गया। आज उसने अपनी जिन्दगी का राज कह सुनाया था लेकिन स्वयं रामू पर इसका कोई असर नहीं। मदन जमीन की ओर देख रहा था—दोनों टेहुने को अपने दोनों बाँहों में समेटे और भुवन सीखचों से बाहर आकाश की ओर देख रहा था। 'अन्धकार की पर्त धुलती जा रही थी' तारों के एकाध धब्बे, नीले आकाश को मटमैला बना रहे थे, प्रकाश की छाया काँप रही थी।

रामू ने फिर चुप्पी तोड़ते हुए कहा—

"भुवन, चौथे रोज हम लोगों का मुकदमा खुलेगा। लेकिन परसों रात को ही हम लोग जेल से बाहर रहेंगे। तुम्हें भी साथ ले चलता लेकिन अब उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती।"

भुवन मुँह बाये देखता रह गया।

दिन-भर रामू गम्भीर रहा। और भुवन अपनी ही चिन्ता में उलझा रहा। तो क्या रामू भुवन को छोड़कर चला जा रहा है? क्या भुवन को बराबर ही जेल में सड़ना होगा? लेकिन रामू तो ऐसा नहीं है—वह धोखा नहीं दे सकता। फिर रामू उसे छोड़कर क्यों भागा जा रहा है? क्या भुवन को भी रामू के प्रतिकार का शिकार होना पड़ेगा? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, वह लड़ेगा। निर्दोष को सरकार जेल में रखकर पचा नहीं सकती। उसे

उगलना ही होगा। दारोगा ने उस पर झूठा इलजाम लगाया है। पुलिस के आदमी मक्कार होते हैं जो जनता को धोखा देते ही हैं, साथ ही सरकार की आँखों में भी धूल झोंकते हैं। यह सब निर्जीव हैं जो खराबी को रोक नहीं पाते और खीझकर उसी डाल को काटने लगते हैं जो उनका आधार है। इन लोगों में थोड़ी भी सचाई नहीं है। थोड़ी भी ईमानदारी नहीं है। लेकिन ईमानदारी है ही किसमें ? सरकार में ? समाज में ? परिवार में ? कहीं नहीं। और इसका मूल कारण है—सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक प्रणाली, राजनीतिक चालबाजी। जब तक नींव नहीं बदली जाएगी तब तक दीवालों पर चूना पोतने से ईमानदारी नहीं आ सकती। जो गरीब हैं वे किस्मत के सहारे जीने की कोशिश करते हैं, जो अमीर हैं वे रुपयों की बदौलत जिन्दगी खरीद लेते हैं और जो गद्दी पर हैं वे कान में तेल डाले आँखों से ही सुनने का उपक्रम करते हैं।......

भुवन सोचता-सोचता बहुत दूर निकल गया कि उसे होश आया लक्खी अभी जिन्दा है। तो क्या लक्खी उसके विरोध में बयान देगी ? रामू ने उसे सब-कुछ कह दिया है। रामू उसे इतना मानता है फिर भी उसने कोई राज छिपा रखा है। परसों उसके मुकदमे की सुनवाई होगी और रामू फ़रार रहेगा। रामू ने खून किया है और भुवन कठघरे में खड़ा होगा और सामने न्यायाधीश होगा, जो न्याय करेगा।

न्याय !

निरपराध को कानून के तर्क पर अपराधी साबित किया जाएगा। न्याय के नाम पर अन्याय की तलवार चलेगी और भुवन तर्क के घाट उतार दिया जाएगा। न्याय जो खोह में बैठा शेर की तरह दहाड़ता है और कमजोर जानवर अपने-आप मर जाते हैं। न्याय जो समाज के शैतानों को प्रश्रय देता है—शैतानों को जिनके हाथ में दौलत है, दिमाग है और जो न्याय क्या जिन्दगी भी खरीद लेते हैं। न्याय—सत्ताधारियों के हाथ में एक अन्धा शस्त्र है जो कुछ

देखता नहीं केवल सुनता-भर है। न्याय जो ज़बान की कैंची से कट-छटकर समाज के कूड़े-करकट को ढक लेता है। न्याय, जो पीड़ित समुदाय पर वज्र बनकर गिरता है और शान्ति छा जाती है।

भुवन ऐंठकर रह जाता। वह दहाड़ना चाहता लेकिन उसकी आवाज़ उसके दिल पर ही टूट पड़ती और भुवन संतुलन खो बैठता।

यों-ही उस रोज़ रात-भर खामोशी रही। भुवन को नींद नहीं आई। पता नहीं रामू और मदन क्या कर रहे थे। सुबह होते ही अनूपसिंह पहुँचा। रामू शायद उसी के इन्तज़ार में था। दोनों कोठरी से बाहर निकल आये और सेल के चबूतरे पर न जाने क्या-क्या फुसफुसाते रहे। लगभग पन्द्रह मिनटों तक रामू अनूपसिंह को धीरे-धीरे कुछ समझाता रहा। अनूप-सिंह का चेहरा उड़ा हुआ था। वह बहुत गबराया-घबराया-सा लग रहा था। इधर-उधर देखकर उसने अनूपसिंह के हाथ में कुछ थमा दिया और चलता बना। रामू उस गुप्त पदार्थ को छिपाये कोठरी में ले आया और कम्बल के तले छिपा दिया। भुवन ने देखा एक गोल-सी एक बित्ते की बोतल थी। रामू ने ज़रा सतर्क होकर धीरे से कहा—"इसे छूना मत और न किसी को देखने ही देना। इसमें एसिड है।" और रामू के चेहरे पर गर्वपूर्ण मुस्कान झलक गई।

दिन किसी कदर कटा। रामू और मदन बहुत व्यग्र थे। हँसने-बोलने की कोशिश करते लेकिन भुवन भाँप जाता कि वे अपने-आपको धोखा दे जाते हैं। शाम को जेलर आया था। उसने रामू से समाचार पूछा और यह तलाश किया कि कोई दिक्कत तो नहीं है? रामू ने हँसकर 'नहीं' कर दिया। जेलर ने बड़ी प्रसन्नता दिखाई कि रामू-जैसा आदमी जेल में शान्त है, कोई शिकायत नहीं आती। और जेलर साहब बड़ी खुशी-खुशी सेल हाते के बाहर चले गए।

रात को खाना खाने के बाद रामू ने भुवन से कहा—"माफ़ करना,

मैं आदमी नहीं हूँ इसलिए आँखें मूँदकर अपनी राह चला जाता हूँ। यह नहीं सोचता कि कितने मील के पत्थर पीछे रह गए। तुम मेरे जीवन में एक घटना बनकर आये और आज मैं घटना के तौर पर ही आगे बढ़ रहा हूँ। विश्वास रखना भुवन, मैं तुम्हें धोखा नहीं दे सकता। तुम निरपराध हो। यह बात केवल मैं ही नहीं जानता, और लोग भी जानते हैं। इसलिए मैं गैरजिम्मेदार आदमी नहीं हूँ। मैंने अपनी जिम्मेदारी बाँट दी है और जानते ही हो कि जो अपनी जिम्मेदारी पूरी करने मे हिचकेगा या धोखा देगा उसे मैं जिन्दा नहीं छोड़ सकता।" भुवन ने ग़ौर किया कि रामू का गला रुद्ध है और वह बहुत मुश्किल से बोल पाता है। अन्धकार फैलता आ रहा था। बाहर बड़े जोरों से बादल गरज रहे थे। सींखचों के बीच से भुवन ने देखा कि आकाश बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। कभी-कभी बिजली चमक उठती और साफ़ पता चल जाता कि भयंकर मेघों से आकाश काला और सफ़ेद हो रहा है। रामू ने भी एक बार बाहर नज़र डाली और बोल उठा—

"मौसम तो बहुत अच्छा है।"

"हाँ," मदन ने सोल्लास जवाब दिया, "लेकिन बीच में बिजली जो चमक उठती है।"

"कोई हर्ज नहीं, इतने बड़े अन्धकार में यह क्षणिक प्रकाश क्या कर लेगा?" रामू ने लापरवाही से उत्तर दिया।

बाहर जब कुछ-कुछ बूँदें पड़ने लगीं तो रामू ने कम्बल के नीचे से वह बित्ते-भर की बोतल निकाली और बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे उसमें का तरल पदार्थ सीखचों पर डालने लगा। भुवन ने देखा कि इस्पात का बना हुआ सींखचा अपने-आप बड़ककर गलता जा रहा है। बीच-बीच में रामू सतर्क होकर बाहर की आवाज भी सुनने लगता। ड्यूटी बदलने वाली थी। करीब आधी रात को मदन और रामू सीखचों से बाहर होगए। रामू ने एक बार घूमकर भुवन को देखा और इतना ही कहा—

"विश्वास रखना, यही सबसे बड़ी चीज़ है। घटना के आधार पर ख्याल मत बदल डालना।" और इतना कहकर वह चबूतरे पर चला गया। मदन ने भी आहिस्ता से नमस्कार किया और रामू के पीछे हो लिया। भुवन सीखचों को पकड़े देखता रहा। रामू ने एक रस्सी निकालकर आम की डाली में फँसा दी और दोनों उसी के सहारे ऊपर चढ़ गए। भुवन ने पत्तों का थोड़ा ज़ोर से करकराना सुना। इसी बीच ज़ोरों से पानी पड़ने लगा।

भुवन काफ़ी देर तक योंही अवाक् खड़ा रहा। वह कुछ उदास हो गया। जब रामू साथ रहा उसे भरोसा मिलता रहा और अब वह फिर अकेला होगया। लेकिन उसे घबराना नहीं चाहिए। वह रामू से भी ज़िन्दा दिल है। वह अकेला है तो क्या हुआ? अकेला आदमी ही आज तक दुनिया को बदलने में कामयाब होता रहा है। और तब वह अपने बिस्तर पर आकर लेट रहा। छत की ओर देखता हुआ...कल लक्खी भी आएगी, शायद मोहन भी आये।...

सवेरे जब भुवन की नींद टूटी तो सुना बाहर जमादार ज़ोर-ज़ोर से सीटी फूँक रहा है। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि जमादार साहब पगली देने का संकेत कर रहे हैं। और शीघ्र ही जेल के द्वार पर का विशाल घण्टा भयंकर रूप से बजने लगा। चारों ओर से शोरगुल की आवाज़ आने लगी। वह आँखें मलता उठकर बैठा भी नहीं था कि जेलर साहब आँखें लाल-पीली किये हुए आ धमके। उन्होंने आते ही भुवन से डपटकर पूछा—

"रामू और मदन कहाँ हैं?"

"हम लोगों का ठेका तो आपने ले रखा है। मैं क्या जानूँ कि आपके व्यापार में क्या घाटा लगा है।" भुवन मन-ही-मन हँस भी रहा था कि इस समय रामू और मदन कहाँ-से-कहाँ पहुँच गए होंगे और जेलर साहब की नींद अब टूटी है।

भुवन का उत्तर सुनते ही जेलर भड़क उठा, "यह जेल है मि· भुवन, अखबार का दफ़्तर नहीं कि जो मन में आये बक दो। अगर सीधे त से नहीं बताया तो समझ लो....जेल की सज़ा बहुत बुरी और पीड़क हो है।" जेलर की इस धमकी से भुवन को गुस्सा तो आया ही, हँसी भी आ गई। उसने अपने क्रोध को दाबते हुए कहा—

"जी हाँ, जेल की सजा बहुत पीड़क होती है लेकिन आज तक उस आज़माइश नहीं की है।"

"तो क्या आप नहीं बताइएगा ?"

"क्या बताऊँ ?"

"यही कि रामू और मदन कहाँ हैं ?"

"भाग गए।" भुवन ने मुस्कराते हुए कहा।

"बकवास बन्द कीजिए, जो मैं पूछता हूँ उसका सीधा जवाब दीजिए। लोग भागकर कहाँ गए ? कब गए ?"

"भागकर कहाँ गए यह तो आप जानिए क्योंकि मैं जेल में बन्द और अन्तर्यामी नहीं हूँ। कब गये यह बताना भी मुश्किल है, लेकिन इत तय है कि वे अब आपकी पहुँच से बाहर हो चुके हैं।"

भुवन के उत्तर से जेलर झल्ला उठा। उसने जमादार को जोर-जोर डाँटना शुरू किया और बेचारा जमादार सिर झुकाये खड़ा रहा। फिर भु को देखते ही उसकी देह में आग लग गई। उसने जमादार को आज्ञा कि भुवन को बेड़ी डाल दी जाए। लेकिन जमादार साहब ने याद दिला कि आज भुवन की तारीख खुलेगी, उसे कचहरी जाना है। जेलर सा ऐंठकर रह गये और चलते-चलते उन्होंने जमादार को आज्ञा दे दी कचहरी से लौटते ही भुवन को बेड़ी डाल दी जाय।

भुवन ने मुस्करा दिया।

दिन चढ़ आया था। नित्य-क्रिया से फुर्सत पाते-पाते कचहरी जाने

समय हो आया। भुवन भी तैयार ही था। जेल के दरवाजे पर ही मोहन खड़ा था। कैदियों को एक रस्से के भीतर घेरकर ले जाया जा रहा था। दो-दो आदमियों को एक-साथ हथकड़ी डाल दी गई थी।

भुवन को देखते ही मोहन हँसने लगा। भुवन भी हँसा लेकिन उसकी हँसी में बहुत बड़ी मजबूरी छिपी हुई थी। भुवन ने हँसकर अपना भाव जतलाना चाहा कि उसे किसी किस्म की चिन्ता नहीं है। वह मस्त है, लेकिन मोहन ?......काफ़ी देर तक कचहरी के हाजत में बन्द रहने के बाद भुवन का मुकदमा खुला। लक्खी भी आई हुई थी, कटघरे में जब वह खड़ी हुई तो उसने एक बार भुवन को देखा और हल्की-सी मुस्कान उसके अधरों पर दौड़ गई, जिसमें क्षमा-याचना का भाव छिपा था। भुवन न्यायकर्ता की ओर देखने लगा।

बयान शुरू हुआ। लक्खी ने भुवन को बिल्कुल निर्दोष बताया और यह भी कहा कि दारोग़ा ने बेचारे पर झूठा इल्जाम लगाया है, असली कातिल तो रामू है जो जेल से ही फ़रार है। मोहन खुशी से उछल पड़ा। भुवन आँखें फाड़-फाड़कर कुछ देर तक लक्खी को घूरता रहा, उसके बाद उसकी आँखें अपने-आप नीची होगईं। भुवन रिहा कर दिया गया।

आज ठीक सात महीने के बाद भुवन उन्मुक्त साँस ले रहा है। बाहर निकलने पर उसे ऐसा लगा जैसे महीनों से बीमार पड़े आदमी को बाहर की धूप पीली-पीली, उजाड़-सी लगती है। वह मोहन के साथ सीधा डेरे पर आया। उसके मन में आया कि वह लक्खी से मिले, उसे धन्यवाद दे आए। लक्खी बहुत अच्छी है। वेश्या होकर भी वह मक्कार नहीं है। वेश्या होकर भी उसे अपने विवेक से भय है। अगर लक्खी चाहती तो आसानी से भुवन को फँसा सकती थी और भुवन या तो फाँसी के तख्ते पर झूल जाता या जिन्दगी-भर जेल की चारदीवारी में सड़ता रहता। और तब भुवन तुलना करने लगा—लक्खी को रामू मक्कार समझता है। लेकिन रामू का

भी कोई दोष नहीं। रामू अपने उपकार का बदला चाहता है और इसीलिए वह दारोग़ा से नफ़रत करता है। लेकिन मुहब्बत की राह तो कोई होती नहीं। मुहब्बत तो एक बच्ची-सी होती है जो वर्जित राह का ही अनुकरण करती है, क्योंकि वर्जित राह पर जिज्ञासा है, जिन्दगी है, खतरा है, सम्मोहन है,...रामू भूल करता है। रामू में कमज़ोरी भी है। और लक्खी; लक्खी अच्छी है। लक्खी भाभी से भी अच्छी है; लक्खी भी अभिनय करती है लेकिन उसका अभिनय केवल अभिनय के लिए होता है और भाभी का अभिनय कलुषित है, ओछा है। लक्खी भी औरत है और अगर इसे परिवार में रहने का मौक़ा मिलता तो शायद बहुत औरतों से अच्छी रहती। आज का परिवार खोखला है, आज का समाज खोखला है और आज का जीवन भी एक ढोंग है। क्योंकि हमारे देश का नागरिक जीवन की महत्ता नहीं समझता। वह केवल जीना चाहता है, भले, उसका जीना मरने से बदतर हो, भले, उसकी जिन्दगी में सड़ाँद घुट रही हो। भले, वह एक दिन में सौ बार मर-मरकर जीता हो लेकिन वह जीना चाहता है।...भुवन अजीब-अजीब बातें सोचता चला जा रहा था कि अचानक मोहन ने सामने चाय की प्याली रख दी और पूछा—

"अब क्या इरादा है ?"

भुवन जैसे चौंक गया। उसने ज़रा गला साफ़ करते हुए कहा—

"यही तो सोच रहा हूँ। मैंने जेल से जो काग़ज़ भेजे थे वह तो रखे होंगे तुम्हारे पास ?"

"हाँ, बहुत अच्छी चीज़ लिखी है तुमने, लेकिन शायद ही कोई प्रकाशक कबूल करे।

तुमने कबूल कर लिया, मैंने कबूल कर लिया। यही क्या कम है ?"

"थोड़ी कड़ी चीज लिख डाली है तुमने।"

"प्रहार थोड़ी कड़ी चीज़ से ही किया जाता है। और आज के साहित्य को प्रहार की ही जरूरत है। देखते नहीं, आज का साहित्य कभी तो घेरे के बाहर चला जाता है और कभी घेरे के भीतर ही दुबक जाता है। और मैं उस साहित्य-सृजन का भी क़ायल नहीं जो समय का दुरुपयोग करता है, जो मानसिक व्यभिचार को प्रोत्साहना देता है। और न तो मैं उस साहित्य-सृजन का ही क़ायल हूँ जो घेरे के भीतर बिल्कुल भीतर दुबक जाता है—इतना भीतर कि बाहर से कोई देख नहीं पाता और भीतर से ही वह दुबका हुआ साहित्यिक शहनशाही भाषा में चीखता-चिल्लाता रहता है कि मैं यहाँ हूँ—इतिहास की तह में, भारत के गौरव में, गुमनामी की कब्र में, मैं यहाँ रो रहा हूँ, मैं यहाँ गा रहा हूँ। समझे? मैं जीवन का क़ायल हूँ—आज के जीवन का, जो खोखला हो गया है और बाह्य-वातावरण ऐसा कि उसे टिकने नहीं देना चाहता। जीवन को ठोस होना है मोहन, बहुत ठोस। आँख मूँदकर 'कछुआ धर्म' अपनाने से जीवन की या साहित्य की रक्षा नहीं हो सकती।" भुवन बोलते-बोलते आवेश में आ गया था। मोहन ने बात बदलने के ख्याल से कहा—

"अब क्या करोगे? अखबारवाले तो शायद ही काम दें।"

"इसकी मुझे चिन्ता नहीं।" भुवन ने गम्भीरता से जवाब दिया। वह बाहर आकाश की ओर देख रहा था। आश्विन का आकाश मेघ के छोटे-छोटे रेशों से टँका था। कुछ देर की चुप्पी के बाद भुवन ने कहा—

"मोहन, मैं बम्बई जा रहा हूँ। जेल जाने के पहले भी यही सोचा था। सुना है, वहाँ संसार-भर के अनुभव बिकते हैं। और आज ही किसी गाड़ी से चल दूँगा।"

मोहन मुँह बाए देखता रहा।

शाम को बम्बई जाने के लिए एक गाड़ी छूटती थी, मोहन भी स्टेशन तक पहुँचाने के ख्याल से आया। भुवन चुप था और मोहन क्या बोले?

गाड़ी में सवार हो जाने के बाद भी दोनों एक-दूसरे को देख लेते केवल। जब गाड़ी खुल गई तो भुवन ने खिड़की से निकलकर कहा—

"अच्छा मोहन, समय ने चाहा तो फिर मिलेंगे।" और गाड़ी बढ़ गई, भुवन योंही बहुत देर तक सिर निकाले देखता रहा, गाड़ी चलती रही। कौन जानता था कि भुवन आज ही बम्बई चल देगा। आज सुबह तक वह जेल में बन्द था। सवेरे जेलर साहब बिगड़ रहे थे। अगर आज वह लौटकर फिर जेल जाता तो शायद उसे सज़ा दी जाती, बेड़ी डाली जाती। भुवन को जेलर का चेहरा याद आया और वह मुस्करा उठा। आज वह बम्बई जा रहा है—एक अनजान शहर में। बनारस पीछे छूट गया, मोहन छूट गया। रामू और मदन छूट गए। लक्खी छूट गई। लक्खी...बेचारी से वह मिल भी नहीं सका! कितना कृतघ्न है वह। जिसने आज उसे मुक्त किया है उसे धन्यवाद तक उसने नहीं दिया। कठघरे में भी वह मुस्करायी थी। कितनी खूबसूरत है लक्खी।

बनारस....समूचा बनारस ही खूबसूरत है।

क्या वह लक्खी को प्यार करने लग गया है?

नहीं, लक्खी ईमानदार है, अच्छी है, इसीलिए भुवन उसे याद करता है। लेकिन क्या याद करता है?...लक्खी की खूबसूरती, पतली, मुलायम गोरी देह...लक्खी की मुस्कराहट...लक्खी के सूखे खुले अधर...नहीं, नहीं, वह लक्खी रामू की भी नहीं है। लक्खी किसी और की है! लक्खी किसी और की है। गाड़ी खटखटाती, हड़हड़ाती भागी जा रही थी, अन्धकार को चीरती, दहाड़ती।

इन्सान की कीर्ति प्रकृति की चुनौती को ललकार रही थी। और इन्सान?...भुवन...

: १५ :

बम्बई पहुँचते ही वह चिन्तित-सा होगया। बेकार आदमी के लिए जंगल और शहर में कोई फ़र्क नहीं है। बेचारा इस लम्बे-चौड़े शहर में कहाँ अपना सहारा ढूंढे ? रमाकान्त को खोजना भी मुश्किल ही था। यहाँ से तो न जाने कितने पत्र निकलते हैं। रमाकान्त को खोजने में शायद महीनों लग जाएँ। और तब तक वह कहाँ टिके। उसने एक विक्टोरिया वाले को बुलाकर तलाश की कि कहाँ पर उसे टिकने के लिए जगह मिल सकती है। भाग्य से विक्टोरिया वाला भला आदमी निकला जिसने एक कच्चे मुहल्ले में भुवन को लाकर एक खोली दिलवा दी। एक कमरा था छोटा-सा। बीस रुपये प्रति माह इसी खोली के लिए देने पड़ेंगे। और भुवन की जेब में कुल सौ रुपये थे और महीने-भर की भूख और बेकारी अलग धमका रही थी। दोपहर का समय था। भुवन को याद आया कि बम्बई में ही उसके पिता के एक परिचित रहते हैं...बड़े आदमी हैं—एक महान साहित्यिक। उन्हीं के पास चलना चाहिए। शायद कुछ मदद मिल जाय। और वे मदद देंगे क्यों नहीं ? अपने ही इलाके के हैं और दूर के नाते में सम्बन्धी भी लगते हैं। रघुवीरसिंह 'प्रबल' के नाम से वह साहित्य-क्षेत्र में सुविख्यात हैं। बचपन में उन्होंने कई बार भुवन को देखा था, भुवन से बातें भी की थीं और आशीर्वाद दिया था कि वह योग्य बने—नाम करे। सो भुवन ने खोली में सामान डाल दिया और अपनी लिखी हुई चीज़ों को लेकर बाहर निकल पड़ा। लेकिन वह पता तो जानता ही नहीं है 'प्रबल' जी का। भुवन को भूख बड़े ज़ोरों से लग रही थी। वह एक होटल में घुस गया।

कोने की टेबल पर ही दो सीटें खाली थीं। भुवन वहीं जाकर बैठ गया और भोजन लाने का ऑर्डर देकर सामने बैठे एक खद्दरपोश सज्जन को घूरने लगा। यह सज्जन 'सरस्वती' पत्रिका को उलट-पलट कर देख रहे थे। भुवन ने सोचा कि यह सज्जन हिन्दी से अभिरुचि रखने वाले मालूम पड़ते हैं। इन्हें 'प्रबल' जी का पता अवश्य मालूम होगा। इसलिए भुवन ने ज़रा झिझकते हुए पूछा—

"क्या आप... यहीं रहते हैं ? मेरा मतलब है आप बम्बई शहर में ही रहते हैं बराबर ?"

"जी हाँ, कहिए क्या बात है ?" सज्जन महोदय ने पत्रिका मोड़ते हुए ज़रा कौतूहल से पूछा।

"क्या आप बता सकते हैं कि 'प्रबल' जी कहाँ रहते हैं !"

"भला कहिए, 'प्रबल' जी को कौन नहीं जानता है यहाँ ! वह तो 'जनसेवक' के प्रधान सम्पादक हैं। अभी कार्यालय में ही मिल जाएँगे।"

भुवन की जान-में-जान आई। वह जल्दी-जल्दी खाना खाकर 'प्रबल' जी से मिलने चल पड़ा। सज्जन महोदय ने रोड नम्बर, जगह और उस कार्यालय के मकान की विशेषता आदि भी बता दी थी। बग़ल में ही वह कार्यालय था। रास्ते-भर भुवन ख्याली पुलाव पकाता जाता। उसने जो किताब लिखी है उसे वह 'प्रबल' जी को पढ़ने के लिए देगा। और 'प्रबल' जी के आशीर्वाद से प्रोत्साहन लेकर वह कितने आगे बढ़ जाएगा। कोई-न-कोई काम भी मिल ही जाएगा। 'प्रबल' जी के हाथ में तो स्वयं ही एक प्रसिद्ध पत्र है। वह चाहेंगे तो उसी पत्र में काम दिला देंगे। और 'प्रबल' जी हैं भी तो उसके पिता के मित्र ही और सम्बन्धी भी। कितनी खुशी होगी उन्हें जब वे मुझे देखेंगे—मेरी रचनाओं को पढ़ेंगे।

भुवन अपनी खुशी की तरंगों में ही डूब रहा था। एक तो विशाल शहर का प्रथम अनुभव, दूसरे एक महान साहित्यिक से वह मिलने जा रहा

था। भुवन सोचता जाता कि 'प्रबल' जी उससे बहुत-सी बातें पूछेंगे और वह बड़ी उत्कण्ठा से उत्तर देगा। गाँव-घर का समाचार पूछने के बाद 'प्रबल' जी साहित्य की चर्चा चलायेंगे। और भुवन अपना दृष्टिकोण रखेगा। वह अपने दृष्टिकोण की पूर्ति के लिए ऐसे-ऐसे तर्क पेश करेगा कि 'प्रबल' जी चमत्कृत होजाएँगे, वाह-वाह कर उठेंगे। सचमुच कितनी प्रसन्नता होगी उन्हें, जब वे भुवन को देखेंगे—उस भुवन को जिसे उन्होंने आशीर्वाद दिया था, उस भुवन को जो उनके मित्र का बेटा है।

भुवन जब कार्यालय पहुँचा तो दिन के दो बज चुके थे। उसने एक स्लिप लिखकर 'प्रबल' जी के दफ़्तर में भेज दिया और स्वयं बाहर बैठकर इन्तजार करता रहा और साथ-साथ गला भी साफ़ करता जाता कि उसकी आवाज़ न फँस जाए।

जहाँ बैठा-बैठा भुवन इन्तज़ार कर रहा था ठीक उसके सामने ही बिना छड़ की खिड़की थी जिससे होकर एक चर्च का गुम्बद साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा था। भुवन इस समय दोमंजिले पर था। वह योंही बैठा-बैठा उस गुम्बद को निहारता रहा—लाल गुम्बद जिसमें एक बहुत बड़ी सफ़ेद घड़ी लगी थी। भुवन ने सोचा यह गुम्बद कितना बड़ा है। इस गुम्बद की घड़ी कितनी बड़ी है लेकिन इसकी विशालता पर किसी का भी ध्यान शायद ही जाता होगा। यह चर्च का गुम्बद है, जिसकी नींव कितनी गहरी पड़ी होगी और न जाने यह कब से खड़ा है लेकिन भुवन-जैसे दो-चार बेकार आदमी ही उसे कभी-कभी घूरते होंगे और सबक लेते होंगे, प्रेरणा लेते होंगे। लेकिन जो व्यस्त हैं, जो खुद महान हैं, जो खुद गहरे हैं। जो खुद...
"चलिये, साहब बुलाते हैं।" भुवन की चिन्ता भंग हुई। सामने एक चपरासी अवहेलना का भाव लिये खड़ा था, बौना-सा। भुवन उठा और सम्भल-सम्भलकर चलने लगा कि कहीं उसकी चाल में कोई कृत्रिमता न आजाए।

दफ्तर में प्रवेश करते ही उसने देखा, सामने एक बड़ी-सी खूबसूरत टेबुल रखी है जिसपर तरतीब से बेजरूरत की चीजें भी रखी हैं और साथ ही दाईं ओर और बाईं ओर एक-एक फ़ाइल ट्रे रखा हुआ है और बीच में सामने एक अधेड़ उम्र के तेजस्वी सज्जन कुछ लिख रहे हैं।

भुवन ने प्रवेश करते ही नमस्कार किया और कुछ देर तक इस आशा में खड़ा रहा कि उसे अब बैठने को कहा जाएगा। लेकिन दो मिनटों तक प्रतीक्षा करने के बाद भी उस तेजस्वी मूर्ति का चेहरा झुका ही रहा। और तब भुवन अपने-आप बैठ गया एक कुर्सी खींचकर। भुवन बहुत ग़ौर से 'प्रबल' जी को देखता रहा और कभी-कभी कमरे की सजावट भी देख लेता। भुवन याद करने लगा जब 'प्रबल' जी उसके पिता के पास आया-जाया करते थे। उस समय उनकी मूँछें साफ़ नहीं थीं और चश्मा भी नहीं लगाते थे। आज तो बहुत परिवर्तन आ गया है। मूँछें साफ़ होगईं, चश्मा आगया और कुर्ता की जगह बूशर्ट ने ले ली। और सबसे बड़ा परिवर्तन जो हुआ वह था 'प्रबल' जी का मौन। वे तो ऐसे नहीं थे।

"हाँ, कहिए क्या आज्ञा है।" 'प्रबल'जी ने सिर नीचा किये ही पूछ दिया। भुवन अकचका-सा गया। वह क्या बोले। 'प्रबल' जी ने उसे आँखें उठाकर देखा भी नहीं। भुवन अपने होटों में ही जी...जी कहकर रह गया।

'प्रबल' जी ने सिर उठाया, ज़रा गौर से देखा और फिर पूछा—"कहिए क्या आज्ञा है।"

"जी मैं '...' का लड़का भुवन हूँ।" भुवन किसी कदर बोल पाया।

"ओ हो, तुम हो। अरे मैं तो पहचान ही नहीं पाया। यहाँ कब आये, घर पर लोग कैसे हैं?"

"मैं घर से नहीं आ रहा हूँ।" भुवन के इस जबाव से 'प्रबल' जी ज़रा चौंके और उन्होंने चश्मा उतारते हुए कहा—

"घर से नहीं आ रहे हो तो फिर कहाँ से आ रहे हो ?"

"बनारस से !"

"कब से घर नहीं गये हो ?" 'प्रबल' जी काफ़ी गम्भीर हो गये थे। भुवन समझ गया कि 'प्रबल' जी का सारा स्नेह हवा होगया फिर भी उसने हिचकते हुए कहा—

"करीब साल-भर से।"

"हूँ"...और 'प्रबल' जी ने अपना चश्मा फिर अपनी आँखों पर डाल लिया और कागज़ उलटने-पलटने लगे। कुछ देर के बाद अपने-ही-आप बोल उठे।

"मिलते रहना," और इसी बीच एक चपरासी आ खड़ा हुआ जिसने बताया कि मैनेजर साहब चाय के लिए याद कर रहे हैं। 'प्रबल' जी ने एक बार भुवन को देखा और फिर चपरासी से बोले—

"चलो, अभी आता हूँ।"

भुवन समझ गया कि 'प्रबल' जी का सारा रागात्मक सम्बन्ध कटे डाली के एक ही झोंके से अचानक टूट गया। और बग़ल में अपनी रचना दाबे वह 'प्रबल' जी के दफ्तर से बाहर निकल आया। जितने उत्साह और उम्मीद के साथ भुवन यहाँ 'प्रबल' जी से मिलने आया था ठीक उतने दूने उत्साह और दूनी नाउम्मीदी से वह वापिस जा रहा था। इस अवहेलना का और क्या कारण हो सकता है ? आज भुवन असमर्थ है, बेकार है इसीलिए 'प्रबल' जी के स्नेह से वंचित होगया। वह अपनी रचना भी नहीं दिखा सका। इच्छा हुई कि इसे फाड़कर फेंक दे लेकिन अपनी कीर्ति की हत्या इतनी सरल नहीं होती। वह अब किसी से भी नहीं मिलेगा। रमाकान्त का उसे पता भी नहीं मालूम। भुवन अपनी खोली में आया और कम्बल पर योंही कुछ देर तक बैठा रहा। बाहर एक दर्जी पूरे वेग से अपनी मशीन चला रहा था। भुवन को इस समय कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा

था। इस विशाल शहर में वह एक अकेली चींटी की तरह रेंग रहा है। बनारस में रामू से भेंट हो गई थी...रामू और 'प्रबल' जी, 'प्रबल' जी और रामू। भुवन इन दोनों की तुलना पर आप हँसने लगा। कम्बख्त दर्ज़ी बाहर बहुत शोर मचा रहा था। भुवन की तबीयत हुई कि जाकर उसकी मशीन तोड़कर फेंक दे और उस लकलके नौजवान दर्ज़ी की गर्दन मरोड़ कर फेंक दे। लेकिन वह कुछ भी नहीं कर सका। मन-ही-मन जलता उफनता लेटा रहा। शाम होने को आई। लेकिन वह इन्सान की सूरत से भी नफ़रत करने लग गया था। आज 'प्रबल' जी जैसे साहित्यिक महारथी से मिलकर वह आ रहा है। साहित्यिक, जिनके ऊपर समाज का मानस-स्तर निर्भर करता है। साहित्यिक जो समाज के सामने एक आदर्श देते हैं। और भुवन एक साहित्यिक महारथी का यथार्थ देखकर लौटा था। साहित्यिक महारथी जो अपने विकास में ही समाज या साहित्य का विकास देखते हैं...समाज या साहित्य के विकास में अपनी हीनता समझते हैं।

भुवन अधिक देर तक वहाँ बैठ नहीं सका। बाहर निकला। दर्ज़ी ने मशीन बन्द कर दी और बीड़ी सुलगाता हुआ भुवन को ज़रा ग़ौर से देखने लगा और फिर एक कश खींचता हुआ बोला—

"मालूम पड़ता है, आप पहली बार बम्बई आये हैं।"

"हाँ।" भुवन ने संक्षिप्त उत्तर देकर मुँह घुमा लिया। लेकिन दर्ज़ी ज़रा नये आदमी पर रोब जमाने के ख्याल से बोल उठा—

"बम्बई बहुत खतरनाक जगह है। जल्दी किसी पर विश्वास नहीं कीजिएगा। आपने समुद्र तो देखा ही नहीं होगा। चले जाइए न, यही सड़क सीधी आपको चौपाटी पर पहुँचा देगी।" और इतना कहने के बाद दर्ज़ी बीड़ी फूँकता हुआ भुवन को देखता रहा। भुवन भी बिना ध्यान दिये सड़क पर निकल आया।

भुवन योंही, बिना उद्देश्य के सड़क पर चलता रहा। चारों तरफ़

शोर-गुल, हज़ारों सवारियाँ, मोटर, ट्राम, बस, विक्टोरिया न जाने कितनी चीज़ें भुवन की नज़रों से गुजरती गईं। लेकिन भुवन जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। बड़े-बड़े मकान आकाश से टक्कर लेने वाले, खूबसूरत तितलियाँ, लेकिन कुछ नहीं बिल्कुल शून्य—भुवन को लगता वह स्वप्न देख रहा है। तरह-तरह की तस्वीरें बनती हैं और तुरन्त मिट जाती हैं, इतनी तस्वीरें कि भुवन किसी को भी देख नहीं पाता। भुवन को लगा, उसकी जिन्दगी योंही समाप्त होजाएगी। जीवन के सभी दर्शन जैसे झूठे हैं, संसार के सभी दार्शनिक झूठे हैं, जो सुख पर विजय की डींग हांकते हैं। सोपेनहावर ढोंगी है जो संघर्ष को ही जीवन मानता है। कुछ नहीं! आज उसके पास चन्द पैसे हैं इसलिए वह कुछ सोच रहा है, चल रहा है, जल रहा है और कल जब वह भूख से तड़पने लगेगा तो दर्शन और चिन्तन भी खत्म होजाएगा। आज उसके भीतर कोई जिज्ञासा नही कि आगे क्या होगा। वह आज की बात भी अच्छी तरह नहीं सोच पाता।

भुवन योंही बहुत देर तक चलता रहा। शाम हो चुकी थी। अचानक उसकी तन्द्रा टूटी जब उसने समुद्र का प्रशान्त वक्षस्थल देखा जो उसकी धमनियों की तरह ही उद्वेलित हो रहा था। भुवन को लगा जैसे वह सब-कुछ पा गया। उसकी इच्छा हुई कि वह दौड़कर समुद्र की लहरों से लिपट जाए। रात्रि का अन्धकार सिमटता आ रहा था। समुद्र के किनारे बैठा-बैठा भुवन जीवन का अनुभव करने लग गया था। वह थोड़ी देर के लिए भूल गया कि उसका सारा भविष्य अन्धकारमय है, उसका सारा जीवन अन्धकारमय है। और वह अपलक नेत्रों से समुद्र की लहरों को देखता रहा, समुद्र की चौड़ाई और लम्बाई को देखता रहा। जहाँ तक उसकी नज़र जाती, वह केवल देखता रहा। और न जाने कब तक भुवन वहीं पर बैठा रहा एक सन्तोष की अव्यक्त अनुभूति महसूस करता हुआ जैसे समुद्र की लहरों के मिस उसकी व्यथा सारे वातावरण में व्याप्त हो रही हो!

: १६ :

आज के दिन भी भुवन कहीं बाहर नहीं गया। कई दिनों तक वह बम्बई का चक्कर लगाता रहा, लेकिन कहीं गुज़र नहीं। बहुत-सी फ़िल्म-कम्पनियों के भी द्वार खटखटाये लेकिन बेकार। वहाँ तो और भी 'असली और नकली' का भेद है। वहाँ तो भुवन से ज़्यादा लक्खी की कदर है। और तब भुवन ने तय किया कि वह किसी के पास नहीं जाएगा। शाम होने को आई तो भुवन ने अपनी कोठरी बन्द की और सड़क पर निकल आया। इस मुहल्ले में कोई खास बड़े आदमी नहीं रहते। उसकी खोली की बाईं ओर करीब सौ गज़ पर एक छोटा-सा, मामूली पुराना फ्लैट था जिसके बरामदे में कुछ लोग बैठे चाय पी रहे थे। भुवन ने उड़ती निगाह से देखा—एक औरत, दो मर्द। एक औरत दो मर्द...भुवन धीरे-धीरे चला जा रहा था कि किसी ने उसे पहचानी आवाज़ में पुकारा। भुवन ने चारों ओर देखा लेकिन कहीं कोई नहीं। भला इस बम्बई शहर में उसे कौन पुकारेगा! वह आगे बढ़ गया। पुकारने की आवाज़ फिर आई तो भुवन को लगा कि रमाकान्त की आवाज़ है। आवाज़ फ्लैट की ओर से ही आयी थी। और उसने जो सिर घुमाकर देखा तो सचमुच हाथ में चाय की प्याली लिए रमाकान्त पुकार रहा है। भुवन को थोड़ा भ्रम हुआ। जब रमाकान्त सीढ़ी से नीचे उतर आया तो भुवन को विश्वास हुआ।

भुवन को कोई खुशी नहीं हुई। वह जानता था कि रमाकान्त का जीवन बहुत सन्तुलित है और उसे मालूम है कि भुवन को हत्या के अपराध में जेल हुई है। रमाकान्त यह नहीं जानता होगा कि भुवन को निर्दोष करार देकर

रिहा कर दिया गया है। जब 'प्रबल' जी यह सब-कुछ नहीं जानते थे तब तो उन्होंने वैसा अमानुषिक व्यवहार किया और रमाकान्त तो सब-कुछ जानता है। यह अच्छा नहीं हुआ जो रमाकान्त ने उसे देख लिया। इधर भुवन ने तय किया था कि वह किसी से भी नहीं मिलेगा। और रमाकान्त से तो बिल्कुल ही नहीं मिलेगा। लेकिन आज जो अचानक ही रमाकान्त से भेंट होगई तो वह घबरा-सा गया। खुशी और उल्लास का एक ज्वार आया लेकिन अपनी परिस्थिति का अन्दाजा होते ही विषाद की चादर तन गई।

खुशी से उछलता हुआ रमाकान्त चाय का प्याला बचाते हुए भुवन से लिपट गया। कई प्रश्न तो उसने वहीं पर दनादन कर दिये। भुवन ने किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। केवल शर्मायी हुई हँसी लिये यन्त्रवत् लिपटा रहा। भुवन को लगा—रमाकान्त अच्छा आदमी है। किसी एक आदमी के दुर्व्यवहार पर सबका चरित्र नहीं आँका जा सकता।

रमाकान्त उसे ऊपर फ़्लैट पर ले गया जहाँ एक पैंतीस वर्ष के सरल सज्जन बैठे थे। उम्र से ज्यादा बुजुर्गी उनके चेहरे से झलकती थी। रमाकान्त ने परिचय कराया। सज्जन का नाम विनोद जी था। प्रसिद्ध फ़िल्मी साप्ताहिक पत्र 'रागिनी' के सम्पादक तथा संस्थापक थे, दुबले-पतले, लम्बे, मूँछें साफ़, गोरे-से। और उनकी बहन थी रीता, जो वहीं बैठी थी, चंचल, कौतूहल-भरी, चाय की प्याली लिये। रमाकान्त ने सबके सामने ही अजीब-अजीब प्रश्न पूछना शुरू कर दिया। बेचारा भुवन किसी क़दर जवाब देता रहा। और अन्त में रमाकान्त ने पूछा—

"कब आये?"

"आज पन्द्रह रोज होगए।"

"और आप ऐसे मित्र निकले कि मिलने तक की भी जरूरत नहीं समझी।"

"भाई, तुम्हारा पता तो मालूम ही नहीं था।"

"यह सब तो टालने की बातें हैं।"

"इन्हें तो मैं रोज ही देखती थी।" बीच ही में रीता कूद पड़ी। भुवन ने सिर उठाकर देखा रीता सरलता से हँस रही थी। रीता देखने में बुरी नहीं थी। गेहुँआ रंग की छरहरी-सी सोलह साल की रीता बहुत चंचल थी, भुवन को लगा कि रीता अच्छी है, खूबसूरत है। और सचमुच रीता की बनावट बहुत अच्छी थी, भोली-भाली, शहर की तितलियों में उसकी शुमारी नहीं हो सकती थी। क्योंकि पारिवारिक सौन्दर्य ही उसमें ज्यादा था और वासनामय चमक-दमक बिल्कुल नहीं। रीता ने अचानक ही भुवन से पूछ दिया—

"आप रोज इसी सड़क से जाते थे न, शाम को?"

भुवन झेंप-सा गया। उसने सिर नीचा किये ही जवाब दिया—

"जी हाँ, टहलने जाया करता था।"

"तो—कर क्या रहे हो?" रमाकान्त ने चाय खतम करते हुए पूछा।

"कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं? क्या मतलब।"

"कोई काम ही नहीं मिलता।" भुवन ने फटी हँसी के साथ जवाब दिया।"

"आप तो ग्रेजुएट हैं न?" विनोद जी ने कुछ सोचते हुए पूछा।

"ग्रेजुएट! अरे यह जीनियस है। इसकी क़लम का लोहा सारा बनारस मानता है। बम्बई की बात तो छोड़ दीजिये।" रमाकान्त बीच ही में बोल उठा।

"तो ठीक है। आप मेरे ही पत्र का भार उठा लीजिए। इधर मेरी तन्दुरुस्ती बिल्कुल ठीक नहीं। इसलिए एक योग्य और विश्वासी आदमी की तलाश भी कर रहा था।" विनोद जी ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

"आप कविता भी लिखते हैं," बीच ही में रीता टपक पड़ी। सभी

लोग ठहाका मारकर हँस पड़े। भुवन को भी हँसी आगई। रीता लजाई-सी ताकती रही।

रमाकान्त ने कहा—"रीता कविता को ही साहित्य समझती है। क्यों रीता?"

"तो कविता के अलावा साहित्य में बच ही क्या जाता है?" रीता ने छूटते ही कहा।

"क्यों, कविता के अलावा साहित्य में और कुछ नहीं होगा?" विनोद जी ने जरा विनोद के साथ पूछा।

"कुछ नहीं। कविता में आनन्द की अनुभूति है, वेदना है और वेदना भुला देने की क्षमता है।" रीता ने जरा रोब से जवाब दिया।

भुवन मुग्ध होकर रीता को देख रहा था। कितनी भोली है बेचारी—जिन्दगी से दूर। मनोरंजन को ही सत्य समझे बैठी है। अभी इसने देखा ही क्या है। जवानी कल्पना के रंगीन पंखों पर सवार होकर आती है। फिर कविता के सिवा इसे और क्या भाएगा। कहानी तो बाद में शुरू होती है, लेकिन भावनाएँ और कल्पनाएँ जीवन को पहले से ही गुदगुदाना शुरू कर देती हैं। और तारतम्य के अभाव में जवानी इधर-उधर से फूट पड़ना चाहती है। भावना की जवानी और जवानी की भावना एक ही चीज़ है जिसमें उम्मीदों के सपने हैं। कविता में तरलता है, शृंगार की अनुभूति है और यथार्थ का अभाव है। बेचारी कविता पसन्द करती है क्योंकि उसमें वेदना की तीव्रता तो होती है जो फक़त मनोरंजन का साधन-मात्र ही बन जाती है। लेकिन उसमें यह नहीं रहता कि वेदना क्यों है, वेदना का अन्त कहाँ है, वेदना का परिष्कार कैसे हो सकता है? बल्कि कल्पना के सहारे पाठक क्षितिज के पार पहुँच जाना चाहता है जहाँ आनन्दानुभूति है, जहाँ मिलन-यामिनी है, जहाँ सत्य की विजय है। और जवानों को इससे ज्यादा और चाहिए ही क्या? जवानी रोना चाहती है और

कविता रुला देती है, जवानी हँसना चाहती है और कविता गुदगुदा देती है। कविता...रीता...कितना सामंजस्य है दोनों में। भुवन को दोनों ही कविता लगीं और भुवन भी कुछ देर के लिए खो गया...रीता...!

"तो आप कब से काम शुरू कर देंगे?" विनोद जी ने अचानक ही पूछ दिया।

"जब से कहिए। मैं तो बेकार ही बैठा हूँ।" भुवन ज़रा सँभल गया था।

"तो कल से ही आरम्भ कर दीजिए न—शुभ दिन भी है। आप टिके कहाँ हैं?"

"जी, आपकी बग़ल में ही एक खोली ले रखी है।" भुवन को थोड़ा भी संकोच नहीं था।

"खोली में टिकने की कोई ज़रूरत नहीं है। आज से तुम्हें मेरे साथ टिकना होगा।" रमाकान्त ने अधिकार के स्वर में कहा।

"अच्छा तो यह होगा कि आप मेरे साथ ही ठहरिए। मुझे भी सुविधा होगी।" विनोद जी ने अग्रह किया।

"जी नहीं, क्षमा कीजिए। मैं बिल्कुल आराम में हूँ।" भुवन ने आजिजी से कहा। वह और आभार लेना नहीं चाहता था। उसका इन लोगों ने अचानक ही इतना सत्कार करना शुरू कर दिया कि बेचारा घबरा-सा गया।

"आप विश्वास कीजिए, मैं अपने आराम के लिए ही आपको अपने साथ ठहराना चाहता हूँ। मैं अब कहीं आना-जाना भी नहीं चाहता। बीच-बीच में खाँसी उखड़ आती है तो परेशान हो जाता हूँ। साथ रहिएगा तो आसानी से पत्र के मुतल्लिक सब-कुछ समझा सकूँगा।" विनोद जी के कथन में थोड़ी-सी भी कृत्रिमता नहीं थी। भुवन चुप रह गया।

उसी रोज़ भुवन ने जगह बदल ली। फ्लैट में चार कमरे थे। शुरू का

कमरा उसे दिया गया और उसके बगल वाले कमरे में रीता रहती थी। एक कमरा बिल्कुल खाली था, जिसमें सब लोग बैठकर भोजन करते या दोपहर को गप्पें मारते और बिल्कुल अन्त वाले कमरे में विनोद जी सोते थे। बहुत रात तक सब-के-सब योंही बैठे बातें करते रहे। रमाकान्त ने भी उस रात विनोद जी के यहाँ ही खाना खाया। विनोद जी आज बहुत खुश थे। रमाकान्त ने पूछ भी दिया—

"आप आज बहुत खुश मालूम पड़ते हैं।"

"क्यों नहीं, आज से मैं दूसरे की कमाई खाऊँगा। आराम मुझे मिला है तो खुश कौन होगा?" विनोद जी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। रमाकान्त 'बहुत खूब-बहुत खूब' कहकर हँस पड़ा और भुवन शर्म से लाल होगया। रीता भी सिर नीचा किये मुस्कराती रही।

खाना खाने के बाद भी कुछ देर तक ये सब बम्बई की हलचलों पर बात-चीत करते रहे। अन्त में रमाकान्त ने ही सभा भंग की और बोला—

"पुरखों का कहना है कि 'ऐसा करो कि और निबहे।' इसलिए चलना चाहिए।"

"अरे, बातों का भी कोई अन्त होता है!" विनोद जी को खाँसी आ-गई। इसलिए उन्होंने ज्यादा जोर भी नहीं दिया और रमाकान्त चला गया।

बहुत रात तक भुवन अपने बिस्तर पर लेटा रहा। बगल के कमरे में ही रीता सो रही होगी इसीलिए वह करवट भी धीरे से बदलता कि कहीं आवाज न हो। आज भुवन को कुछ अजीब बेकरारी-सी लग रही थी। यों तो नई जगहों में रहने का वह आदी ही हो गया था और कहीं भी वह नयापन महसूस नहीं करता। लेकिन आज उसे सब-कुछ ही नया-नया लग रहा है और आज का नयापन कुछ अजीब बेकरारी, गुदगुदी और मीठे संगीत में शराबोर-सा लग रहा है। क्यों?...क्यों वह ऐसा महसूस करता

है ? और करवट बदलने में आवाज़ से वह क्यों डरता है ? क्या बगल में रीता सो रही है इसीलिए ? रीता कितनी सरल है—जैसे कुछ नहीं जानती। कितना विश्वास है, उसमें हँसती है तो लगता है जैसे सारा वातावरण चाँदनी में भीग गया। लक्खी भी तो सबों से हँसकर बातें करती थी। उसकी बातचीत में भी तो यही चपलता थी। लेकिन नहीं, रीता की हँसी में अभिनय नहीं है, कोई अर्थ नहीं है, कोई स्वार्थ नहीं है कोई चेतना नहीं है। रीता की हँसी में पारिवारिक आनन्द की एक उम्मीद सोई हुई है। पारिवारिक आनन्द। भुवन ज्यों-ज्यों अपने दिमाग को आराम देना चाहता उसकी बेचैनी बढ़ती जाती, उसका सिर झनझनाने लगता। भुवन इतने बड़े संसार में अकेला है बिल्कुल अकेला। उसका जीवन उसीके लिए है। संसार में उसका कोई अपना नहीं जिसे वह कुछ दे सके जिससे वह कुछ ले सके। जिसकी उसे चिन्ता हो और जिस चिन्ता में वह डूब सके ऐसा कोई नहीं, उसका कोई नहीं। वह बड़ा-से-बड़ा आदमी हो जाएगा लेकिन उसका मन भूखा ही रहेगा। उसे कोई स्नेह नहीं दे सकेगा। स्नेह के अभाव में इन्सान मुर्दा है, मशीन है। मशीन भी तो बहुत काम करती है। बल्कि कर्मठ-भाव का साकार प्रतीक है—मशीन ! मशीन से भी तो समाज को बहुत फ़ायदा है। और भुवन भी मशीन ही है और कुछ नहीं......

भुवन कान लगाकर सुनने लगा कि बगल के कमरे से आवाज़ तो नहीं आ रही है। चारों ओर खामोशी थी। घण्टे आधे घण्टे पर विनोद जी खाँसने लगते और फिर वही नीरवता। कभी-कभी नीचे सड़क से कोई भारी भरकम लॉरी गुज़र जाती। भुवन को बिल्कुल-ही उजाड़-सा लग रहा था। वह सोना चाहता, सब-कुछ भूलकर वह चाहता कि नींद आजाए, लेकिन नींद आने भी लगती तो मन के गुब्बारे पर चढ़कर उड़ भागती। उसके सारे शरीर में थकान और दर्द मालूम होने लगा। वह महसूस करता कि उसे नींद आ रही है, उसे सो जाना चाहिए। लेकिन वह सो नहीं पाता।

दूर घड़ियाले में दो का घण्टा गूँज उठा। उसने सोचा ज़रा बाहर से घूम आये तो शायद नींद आजाए और वह बाहर निकल आया।

अमावस की अँधेरी रात। ऊँचे-ऊँचे मकानों की खिड़कियों से प्रकाश आ रहा था। अन्धकार में वे ऊँचे-ऊँचे मकान भी जैसे ऊँघ रहे थे। शहर की रोशनी से दूर क्षितिज पर प्रकाश की छाया खामोश सी लटक रही थी।

भुवन देखता रहा। उसे रात की खामोशी अच्छी लगती। बाहर ठंड भी पड़ रही थी, भुवन बहुत देर तब बरामदे में खड़ा रहा। उसकी तबीयत होती कि वह जरा सड़क पर से घूम आये, दौड़े, और तब थकान से शायद नींद आ जाए। लेकिन नीचे उतरने पर आवाज़ होगी और रीता जग जाएगी।

रीता क्या सोचेगी? लेकिन वह रीता से इतना डरता क्यों है? नहीं, वह रीता की बात भी नहीं सोचेगा। रीता लक्खी-सी नहीं है। रीता एक भले घर की लड़की है। रीता के भाई ने उसे काम दिया है। रीता सभ्य लड़की है, भुवन...आवारा है, वह उसके बारे में नहीं सोचेगा—नहीं सोचेगा। एक...दो...तीन...घड़ियाल ने तीन बजने की घोषणा कर दी। भुवन ऊब गया। क्या रात-भर वह योंही जगा रहेगा?

"आप सोये नहीं?" रीता पीछे खड़ी थी।

भुवन पसीना-पसीना होगया। अँधेरी, खामोश रात में रीता ठीक उससे सटी उसके सामने खड़ी थी। वह रीता से डर रहा था और रीता उससे पूछ रही थी—"आप सोये नहीं।" अभी भी रीता की आवाज़ में वही स्वाभाविकता, वही चापल्य, वही स्निग्धता। भुवन काठ होगया।

"आप ज़रूर कविता भी बनाते हैं।" रीता ने हँसते हुए कहा।

"जी नहीं, यों ही......हँ हँ हँ···नयी जगह है न, इसीलिए नींद नहीं आयी।" भुवन की ज़बान बुरी तरह धोखा दे रही थी।

"अब तो सवेरा हो चला।" रीता ने आकाश की ओर देखते हुए कहा।

"नहीं, अभी काफ़ी रात बाकी है।" भुवन दूर—बहुत दूर निर्लिप्त आँखों से देख रहा था।

"मुझे भी आज अच्छी तरह नींद नहीं आयी। अब आप जाइए, सो रहिए। भइया बहुत सवेरे उठ जाते हैं। फिर आप सो नहीं पाइएगा।" भुवन कहीं और घूम रहा था। उसने जैसे कुछ नहीं सुना। रीता ने ज़रा जोर देते हुए कहा—

"अजी सुना नहीं आपने, सो रहिए, सवेरे उठना होता है यहाँ। चलिए आपको कमरे तक छोड़ आऊँ।"

भुवन के साथ ही रीता भी उसके कमरे तक आयी। और कमरा बताने के ढँग से इशारा भी किया। इस मज़ाक से भुवन का बोझ जैसे अचानक ही हलका होगया और धन्यवाद कहकर मुस्कराता हुआ कमरे में दाखिल होगया।

भुवन का मस्तिष्क कुछ हल्का हो चला। उसकी समूची देह में तनाव आ गया था। चुपचाप बिस्तर पर लेट रहा। कुछ देर तक उसकी आँखों के आगे रीता की वह भोली चुलबुली तस्वीर आती-जाती रही जब उसने झुक-कर कमरे की ओर इशारा किया था और उसके बाद मौज से झूमकर घूम गयी थी, चली गई थी।...रीता विनोद जी की कुँआरी बहन है। अभी रीता के सामने सारा भविष्य पड़ा है मुँह बाये, और रीता बेफ़िक्र है।

'किस तरह झुककर../.मुस्कराकर...मुड़कर चली गयी।' कितनी अमर भंगिमा थी—कितनी मादक! भुवन खो गया...सो गया।

: १७ :

भुवन के कार्य-भार सँभालते ही रागिनी चमक उठी। सम्पादकीय, आलोचनाएँ और टिप्पणी तो ऐसी बेजोड़ आने लगीं कि अन्य पत्रों ने उदाहरण देना शुरू कर दिया। कुछ ही दिनों में पत्र के साथ-साथ भुवन की धाक भी समूचे शहर पर जम गयी। विनोद जी को सन्तोष था कि उनकी अनुपस्थिति में भुवन बड़ी सफलता से काम चला रहा है। भुवन भी अपनी जिम्मेवारी को समझता। उसे अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर मिला और सबने आश्चर्य से देखा कि एक नौजवान नवागन्तुक ने पत्र-जगत् में देखते-देखते अपनी धाक जमा ली। बहुत लोगों को बुरा भी लगा लेकिन जनमत के आगे सभी चुप होगए। रागिनी की बिक्री दूनी होगई।

भुवन सवेरे से शाम तक कार्यालय में ही डटा रहता। कभी-कभी तो सबके सो जाने पर वह घर लौटता लेकिन रीता जगी रहती। वह स्वयं अपने हाथों से भोजन ले आती और भुवन को खिलाती। भुवन अनुगृहीत नहीं होता, निहाल हो जाता। वह बराबर कोशिश करता कि कार्यालय से सवेरे लौट आये क्योंकि उसे मालूम रहता कि रीता उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। घर छोड़ने के बाद बम्बई आने पर ही उसे अपने-आपसे, अपने डेरे से, अपनी जिन्दगी से मोह होने लगा था। बनारस में उसने कभी महसूस नहीं किया कि उसे अब डेरे पर लौट जाना है, देर हो रही है। लेकिन अब बात ही दूसरी होगई। अगर देर हो जाती तो रीता रूठ जाती, बिगड़ जाती और भोजन परोसकर, मुँह फुलाकर बैठ जाती। भुवन मुस्कराकर पूछता—

"रंज होगई ?"

और रीता चुप रहती। फिर भुवन धमकी देता कि अगर वह नहीं बोली तो खाना नहीं खाएगा। रीता अपने मन का गुब्बार निकाल देती—

"काम के साथ-साथ चाम का भी ख्याल करना चाहिए।"

भुवन को मौक़ा मिलता। वह रीता का मन टटोलता—

"क्या मेरे शरीर की रक्षा के लिए ही तुम रंज होती हो। लेकिन चाम की कोई क़ीमत नहीं होती।"

"क़ीमत क्यों नहीं होती। शरीर ही नहीं रहेगा तो काम कैसे होगा।" रीता झल्ला उठती।

"अच्छा यह तो बताओ कि तुम शरीर से यह बात कह रही हो या मन से ?"

"यह मैं नहीं जानती।" रीता फिर मुँह फुला लेती।

"अगर मैं यहाँ से चला जाऊँ तो क्या करोगी ?" भुवन हँसता हुआ पूछता।

"कैसे चले जाइएगा ? भइया जाने देंगे जो ?"

"मैं तुम्हारे भइया की चिन्ता नहीं करता। तुम तो जाने दोगी न ?"

और रीता भोली-भाली बच्ची की तरह सिर हिलाकर कह देती, "ऊँ हूँ।" भुवन क्षण-भर देखता रह जाता—मुग्ध मुस्कान के साथ, और फिर खाने लग जाता।

इसी तरह भुवन का समय भागने लगा। भुवन दिनभर तो व्यस्त रहता लेकिन रात को उसे वेदना आ घेरती। बहुत रात गए वह सो पाता। कभी-कभी बाहर बरामदे पर निकल आता। रीता भी आती लेकिन बातें बहुत कम होतीं। भुवन तो शुरू से ही बहुत कम बोलता आया है, वह बहुत-कुछ बोलना चाहता लेकिन बोल नहीं पाता। सोचने से उसे फ़ुर्सत नहीं मिलती और सोचने में उसे आनन्द आता। वह स्वयं अपने-आपसे प्रश्न करता,

अपने-आपको कोसता, अपने-आपको शाबाशी देता और अपने-आप ऐंठकर रह जाता। उसे किसी पर इतमीनान नहीं था। इसलिए किसी से अपना राज़ नहीं कहता। अपनी वेदना अपने भीतर रखने में ही वह भला समझता। और कोई उसे मिला भी तो नहीं जिसे अपना दुख-दर्द कह सके, जिसके सामने अपना भार हल्का कर सके। वह 'दिनकर' की उस पंक्ति को कभी-कभी गुनगुनाया करता, "अश्रु पोंछने वाला जग में बिरले को मिलता।" और फिर अपना भेद कहकर वह किसी का आभारी होना भी नहीं चाहता। रीता उसके जीवन में पूर्णता बनकर आयी लेकिन वह इतनी मासूम-सी लगती कि भुवन कुछ भी कहने से हिचक जाता। उसे भय होता कि रीता कहीं मायूस या दुखी न होजाय। रीता सीधी है, अबोध है इस-लिए जीवन के उलझनों में उसे नहीं डालना चाहिए और यही सोचकर भुवन खामोश रह जाता। लेकिन इस खामोशी में उसे सुख होता। वह महसूस करता कि अब वह अकेला नहीं है। उसके जीवन में रीता आ चुकी है। भले ही रीता इस बात को नहीं समझे, नहीं बोले लेकिन भुवन तो ऐसा ही समझता है। विनोद बाबू भी निश्चिन्त थे।

भुवन आज सवेरे ही कार्यालय से लौट आया। आज रीता सिनेमा देखने जाएगी और भुवन को ही उसके साथ जाना होगा। विनोद बाबू ने विशेष आग्रह से कहा था। बिचारे अस्वस्थ होने के कारण स्वयं नहीं जा सकते।

तस्वीर का नाम 'हमराही' था। अच्छी तस्वीर थी। दोनों विक्टोरिया से 'हमराही' के बाबत बातें करते लौट रहे थे। दोनों को ही खेल पसन्द आया। बातचीत खत्म हो जाने पर दोनों खामोश होगये। दोनों दो तरफ़ सड़क के किनारे खड़े मकानों को देख रहे थे—निरुद्देश्य, लेकिन दोनों के मन में कुछ था जिसे दोनों ही एक-दूसरे को कहना चाहते। लेकिन क्या बोला जाए। एक बात मन में आती कि सड़क के बगल की दूकानों की तरह

मन की बात भी निकल भागती और दूसरी बात आती और वह भी गुज़र जाती। दोनों खामोश थे, दोनों बेक़रार थे। न जाने रीता की चुलबुलाहट कहाँ चली गयी थी। सड़क पर घोड़े के टाप की आवाज़ गूँज रही थी, और दोनों का कलेजा धकधक कर रहा था। तरह-तरह के मनोभाव मस्तिष्क में चहलक़दमी कर रहे थे। कभी-कभी बगल से मोटर गुज़र जाती, बस निकल भागती, विक्टोरिया चला जाता और फिर वही अन्धकार की खामोशी, सड़कों के किनारे की जलती बत्तियाँ, विक्टोरिया के घोड़े की टाप की आवाज़ टक-टक, टक-टक और उसी रफ़्तार से, नहीं-नहीं, उससे भी ज्यादा रफ़्तार से हृदय की धड़कन। दोनों खामोश। दोनों बेचैन। आखिर भुवन से नहीं रहा गया। उसने हिचकते हुए धीरे से पुकारा 'रीता...।' रीता ने सिर घुमाकर देखा और चुप रही।

"रीता," भुवन ने कहना शुरू किया, "मुझ पर इतना विश्वास क्यों करती हो?" अजीब प्रश्न था। रीता कुछ भी जवाब नहीं दे सकी। वह केवल भुवन की ओर देखती रही। विक्टोरिया के भीतर अन्धकार था। कभी-कभी सड़क के किनारे की रोशनी दोनों के चेहरों पर पड़ती और दोनों एक-दूसरे को देखते रह जाते। भुवन ने फिर अपना प्रश्न दुहराया। रीता ने सिर नीचा कर लिया और बोली—

"इसका कोई कारण नहीं दिया जा सकता।"

"लेकिन और लोग भी तो तुम्हारे यहाँ आते हैं। तुमने उन लोगों पर इतना विश्वास क्यों नहीं किया?"

"और लोगों पर नहीं विश्वास करने का जो कारण हो सकता है वही कारण आप पर विश्वास करने का भी हो सकता है।"

"कौन सा कारण है वह?"

"मन।" रीता भुवन की ओर देख रही थी।

—

"लेकिन मन तो कोई खास चीज़ नहीं होता।" भुवन की जिज्ञासा प्रबल हो रही थी।

"आप इतना भी नहीं जानते ?" रीता ने ज़रा अठखेलियों के स्वर में कहा, "फिर आप सम्पादक कैसे होगए ?"

"सम्पादक तो किस्मत से बन गया। लेकिन तुम बता दो कि मन क्या होता है।" भुवन ने स्मित हास के साथ पूछा।

रीता कुछ देर तक चुप रही फिर बोली—

"मन हृदय का वाहक है। हृदय जो-कुछ भी आदेश देता है मन उसे स्वीकार करता है।"

"लेकिन तुम्हारा मन या हृदय यह तो जानता नहीं कि मैं कौन हूँ। कैसा हूँ और कहाँ हूँ ? तुम्हें अपनी आँखों से भी काम लेना चाहिए।" भुवन ने ज़रा गम्भीर होकर कहा।

"आँखें भी माध्यम ही हैं, उनका अलग से कोई अस्तित्व नहीं।"

"रीता...!"

"भुवन...।"

भुवन ने रीता के दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिये। रीता ने कोई आपत्ति नहीं की। उसकी सारी चंचलता, शिथिलता में बदल गई। भुवन बेसुध होगया। ऐसा मालूम पड़ा कि अचानक ही सनसनाती हुई कोई बहुत तेज़ चीज़ भुवन के शरीर से गुज़र गई ! भुवन का सारा शरीर झनझना उठा। उसकी आँखें बन्द होगईं। कुछ देर तक दोनों योंही बैठे रहे—बेसुध-से। अन्त में भुवन ने साँसों के स्वर में कहा—

"रीता, मेरा पिछला जीवन बहुत बुरी राह से गुज़र चुका है।"

"जीवन आज को कहते हैं; कल के भुवन को मैं नहीं जानती।"

"तब तो आने वाला कल भी कुछ और ही रहेगा ?"

"नहीं, आज का भुवन आने वाले कल का आरम्भ है। आज तो

जन्म हुआ है। कल जिन्दगी आयेगी—जिन्दगी, जिसे कोई छोड़ नहीं सकता। जिन्दगी छोड़ने का मतलब होता है मरण और जब मर ही जाऊँगी तो कल की बात ही नहीं उठती।" भुवन हैरान था—जिस रीता को वह एक सरल, चंचल लड़की समझ बैठा था वह कितनी बड़ी विदुषी है। तो क्या नारी का भीतरी रूप इतना परिपक्व, इतना ठोस और इतना बदला हुआ होता है। भुवन को अचानक ही जैसे जीवन का सबसे बड़ा राज मिल गया। नारी सर्वोन्मुखी होती है। वह जननी है इसलिए उसमें चापल्य की तरलता है—आने वाली सन्तान का पूर्वाभास। नारी जीवन है। इसलिए उसमें भाव की गहनता है। नारी एक विरोधाभास है, इसलिए समझ से परे है। भुवन का समूचा शरीर काँप रहा था। उसकी भुजाएँ काँप रही थीं। वह मदहोश हो रहा था। उसने अपने काँपते हुए हाथों से रीता को अपनी ओर खींच लिया। रीता ने आत्म-समर्पण कर दिया। वह चुपचाप भुवन के कँधे पर लुढ़क गई। बाहर भयंकर अन्धकार—बीच-बीच में बिजली के प्रकाश का झोंका, फिर खामोशी, प्रकृति और मानवी कृति में जैसे होड़ लग रही थी अन्धकार बहुत गहन था !

भुवन की भुजाओं में प्रकाश-पुंज सिमट रहा था।

दोनों इसी हालत में बहुत देर तक बैठे रहे—दुनियाँ से दूर—मदहोशी की नींद में। जब विक्टोरिया वाले ने पूछा कि कौन-सी कोठी पर उतरना है तब कहीं जाकर ध्यान टूटा। दोनों ऊपर आये। रमाकान्त न जाने कब से जमा था, भुवन को देखते ही चिल्ला उठा—

"अरे वाह रे भुवन बाबू, जैसे एक आप ही हैं सिनेमा देखने के शौकीन, और हम लोग तो रेगिस्तान के ठूंठ है। मुझे खबर क्यों नहीं दी ?"

"मैं क्या जानता था कि तुम भी चलोगे और इधर एक हफ़्ते के बाद तो दीख ही पड़े हो।" भुवन ने झेंपते हुए कहा। वह झेंप रहा था चूँकि रीता उसके साथ गई थी न जाने रमाकान्त क्या सोचता होगा। लेकिन

रमाकान्त का ध्यान उस ओर बिल्कुल ही नहीं गया। उसने अतिकृत्रिम गम्भीरता से कहा—

"खैर, माफ़ किया।" और ठठाकर हँस पड़ा। भुवन का बोझ हल्का हुआ। रीता भीतर चली गयी थी। इधर-उधर की बात करने के बाद रमाकान्त चलने के लिए तैयार होगया। भुवन उसे सड़क तक छोड़ने आया तो रमाकान्त अचानक ही गम्भीर हो उठा और बोला—

"जानते हो भुवन, 'मैं एक जरूरी काम से यहाँ आया था।' और तुम्हारी प्रतीक्षा में ही बैठा था।"

"क्यों, कुशल तो है?" भुवन आवश्यकता से अधिक चिन्तित हो उठा। वह मन-ही-मन सोच रहा था कि रीता के बारे में तो कोई...कि इतने में रमाकान्त बोल उठा—

"बनारस से एक चिट्ठी आयी है—मोहन की।" भुवन अचानक ही चौंक उठा। 'बनारस से मोहन की चिट्ठी...क्या रामू...वह आगे कुछ भी नहीं सोच सका और बड़ी उतावली से पूछा, "कैसी चिट्ठी है?"

"वह नौकरी से हटा दिया गया है। उससे पुलिस-अधिकारियों ने रामू का और तुम्हारा पता पूछना शुरू कर दिया। लेकिन उस बेचारे को किसी का पता तो मालूम था नहीं। प्रधान सम्पादक तक यह बात पहुँची और रामू का जिक्र आते ही उन्होंने मोहन को बर्खास्त कर दिया। बिचारे ने रामू को देखा भी नहीं होगा। रमाकान्त बहुत उदास था। भुवन जरा क्षुब्ध होकर बोला—

"लेकिन मैं तो निर्दोष करार दे दिया गया हूँ।"

"पुलिसवाले रामू को पकड़ना चाहते हैं। उस पर कई खून के जुर्म लगाये गए हैं।"

भुवन की सारी शान्ति न जाने कहाँ उड़ गई। वह अचानक ही बहुत गम्भीर होगया—

"तो तुमने कुछ जवाब भी दिया है ?"

"हाँ, उसे अपने पास बुला लिया है। यहाँ बहुत से काम मिल जाएँगे और एक-साथ रहेंगे भी।" रमाकान्त ने ऐसे भाव से कहा जैसे सारी समस्याएँ हल होगईं। लेकिन भुवन कुछ नहीं बोला, उसके आगे पल-भर में बनारस की जिन्दगी दौड़ गई। उसने अपनी आँखें छोटी करते हुए पूछा—

"कल तुम डेरे पर रहोगे ?"

"जिस समय कहो।"

"शाम को ?" भुवन ने पूछा।

"ठीक है; रहूँगा। चले आना।"

"अच्छी बात है। अब जाओ कल मैं शाम को मिलूँगा।" और इतना कहकर बिना किसी शिष्टाचार के भुवन फ्लैट पर चला आया। वह बहुत आशंकित हो उठा था। न जाने क्या होने वाला है। बहुत दिनों के बाद एक तिनका मिला वह भी बह जाना चाहता है। भुवन का हृदय चीत्कार कर रहा था। उसकी वजह से बेचारा मोहन भी ठोकर खा रहा है। मोहन क्या सोचता होगा ? जहाँ कहीं भी मैं जाता हूँ, वहाँ की मिट्टी ही जहरीली हो जाती है। पुलिस वाले उसका पीछा कर रहे होंगे।...पुलिस वाले... जेल...रीता...जिन्दगी...। भुवन का सिर चकराने लगा। अब वह कहाँ जाये ? रीता का क्या होगा। अभी-अभी कुछ देर पहले रीता उसके कन्धों पर झुकी थी, कुछ देर पहले उसने रीता का विश्वास पाया है, प्यार पाया है और अभी...नहीं-नहीं, रीता अबोध है, रीता बच्ची है। उसे वह धोखा नहीं दे सकता। वह रीता से साफ़-साफ़ कह देगा कि उस पर खून का जुर्म लगाया गया था। वह हाजत भुगत चुका है। वह रामू का साथी है। एक गुण्डा का हमराही है—एक गुण्डा है। उसे बम्बई भी छोड़ देना चाहिए। वह कहीं और जगह चला जायेगा। रीता की सारी जिन्दगी उसके सामने है। जिन्दगी......

: १८ :

आज दफ़्तर में भुवन की तबीयत नहीं लगी। काम करता-करता वह बनारस पहुँच जाता, लक्खी आ जाती, दारोगा मुस्करा उठता। खून, जेल, रामू आदि सभी उसके सामने विकृत रूप में आते और चले जाते। और तब रीता का भोला-भाला चेहरा भी सामने आ जाता। भुवन खीझ-खीझ उठता। सिर दबाकर कुछ लिखने का उपक्रम करने लगता लेकिन शीघ्र ही कलम रख देनी पड़ती।

डेरे पर भी कई बार रीता ने भुवन को टोक दिया था। वह रीता को देखता, तो देखता ही रह जाता। रीता ने भी ग़ौर किया कि आज भुवन उखड़ा-उखड़ा-सा दीख पड़ता है। लेकिन उसे पूछने का मौक़ा नहीं मिला। रीता भी कुछ संशकित होगई—जिज्ञासा के साथ।

निर्धारित समय से पहले ही भुवन ने कार्यालय छोड़ दिया और सीधे रमाकान्त के डेरे पर जा पहुँचा। रमाकान्त अभी तक लौटा नहीं था।

रमाकान्त एक छोटे-से फ़्लैट में रहता था। भुवन बरामदे में पड़ी एक कुर्सी खींच कर बैठ गया। बैठा-बैठा जब ऊब गया तो बरामदे में ही टहलने लगा। भुवन ने कोठलियों की छानबीन शुरू की। लेकिन बाहर से देखने से ही मालूम होगया कि फ्लैट खूबसूरत है और शानदार भी। बाहर कोई नहीं था—हालाँकि दरवाजे खुले थे। उसने एक बार आवाज़ भी लगाई लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। भुवन आज पहली बार रमाकान्त के डेरे पर आया था। उसे शक होने लगा कि यह रमाकान्त का ही फ्लैट है या और किसी का। क्योंकि रमाकान्त तो इतना शानदार फ्लैट रख नहीं सकता।

इसी उधेड़-बुन में भुवन चक्कर लगाता-लगाता फिर कुर्सी पर आ बैठा।

रमाकान्त का फ्लैट वर्ली चौपाटी के पास ही पड़ता था। भुवन के ठीक सामने ही एक चिमनी दिखाई पड़ रही थी। दूर से भुवन अन्दाज़ा नहीं लगा सका कि वह कपड़े की मिल है या किसी और चीज़ की। लेकिन चिमनी से धुआँ का गुब्बार निकलता, हल्का पड़ता और फिर गुब्बार का एक अम्बार निकल पड़ता। सामने बहुत से मकान—दूर-दूर तक केवल मकान-ही-मकान दिखाई पड़ रहे थे। लेकिन वह पतली-सी लोहे की काली चिमनी सबसे आकर्षक, सबसे बीभत्स और सबों से बड़ी दीख पड़ती। मोहन की नौकरी छूट गई। रामू फ़रार है। और रीता...आह...भुवन कितना बदकिस्मत है कि उसके लिए ज़िन्दगी भी मौत बन जाती है।

बहुत देर तक भुवन यों‌ही बैठा रहा चिमनी को देखता हुआ। जब दिन ढलने को आया तो एक नौकर उस फ़्लैट पर दाखिल हुआ। भुवन ने अनुमान लगाया शायद यह रमाकान्त का नौकर है। सचमुच वह रमाकान्त का नौकर ही था। एक गिलास पानी लाने की आज्ञा देकर वह फिर आराम से कुर्सी पर पसर गया। अभी वह आराम का भाव महसूस ही कर रहा था कि खड़ाऊँ के खट-खट की आवाज़ सुनाई पड़ी। भुवन ने सिर घुमाकर के देखा तो भौंचक रह गया। सामने 'प्रबल' जी मुस्कराते चले आ रहे थे। भुवन ने नमस्कार किया और मुँह बाये देखता रहा कुछ देर कि आप कहाँ से टपक पड़े।

"आवाज़ क्यों नहीं दी ? मैं तो यों‌ही लेटा हुआ था।" 'प्रबल' जी आते ही स्नेह से फूट पड़े।

भुवन ने ज़रा आश्चर्य से झेंपते हुए पूछा—

"क्या आप ?......"

"हाँ, मेरे ही साथ रमाकान्त जी रहते हैं।" 'प्रबल' जी बीच ही में

बोल उठे भुवन असमञ्जस में पड़ रहा। 'प्रबल' जी कुर्सी खींचकर बैठते हुए बोले—

"मुझे पुकार क्यों नहीं लिया ?"

"जी, मैंने दो-एक बार आवाज़ तो लगाई थी।"

"ओह शायद झपकी आगई होगी, आज तबीयत कुछ खराब हो गई थी। कार्यालय भी नहीं गया।"

"क्या हुआ है ?"

"कुछ नहीं, पेट की गड़बड़ी थी, अब ठीक है।···तुम उसके बाद फिर मिले नहीं ?" 'प्रबल' जी के स्वर से अधिकार टपक रहा था। भुवन की चेतना जैसे जग गई। 'प्रबल' जी के व्यवहार को वह भूला नहीं था। उसने थोड़ी बेरुखी से जवाब दिया—

"बात यह है कि अकेले ही सब काम देखना पड़ता है। इसलिए मौका ही नहीं मिला।"

"हाँ भाई, मौका क्यों मिलने लगा। तुम लोग नौजवान लेखक हो न। बूढ़े लेखकों की आलोचना भी तो करनी होती है। लेकिन भुवन, एक बात तुम लोगों को स्मरण रखनी चाहिए कि बुराई तभी नजर आती है जब अच्छाई का तेज फैला होता है।"

मैं समझा नहीं।" भुवन ने मुस्कराते हुए कहा।

तुम्हारी आलोचना मुझे बहुत अच्छी लगी। फिर भी इतना बता दूँ कि जीवन में केवल भूख-ही-भूख सब-कुछ नहीं होती। बल्कि जीवन में पूर्णता तभी आ पाती है, जब वह प्रेम में शराबोर हो जाता है।"

"वह भी तो भूख ही हुई।" भुवन ने सर झुकाते हुए कहा।

'प्रबल' जी ठठाकर हँस पड़े जरा अहंभावना से बोले—

"प्रेम में भूख नहीं होती। वहाँ तो त्याग की शान्ति होती है। हजारों वर्ष पहले की प्रेम-कहानियाँ आज भी ताजा लगती हैं। आज हर आदमी

उसी प्रेम के लिए लालायित है। लेकिन हमारे समाज का इतना नैतिक पतन हो गया है कि प्रेम को भी हम भूल ही समझ बैठे हैं।"

"जिसको आप प्रेम कहते हैं, वह आसक्ति है। सम्बन्ध जब रागात्मक हो जाता है, एक की वृत्तियाँ जब दूसरे के वियोग में सजग हो उठती हैं, विकल हो उठती हैं—आसक्ति की स्थिति उत्पन्न होती है। और उसी आसक्ति को हम लोगों ने एक अस्पष्ट नाम प्रेम दे दिया है। वस्तुतः प्रेम का वह रूप जिसे हमने-आपने किसी अदृश्य एवं अस्पष्ट सत्ता से तथाकथित प्रेरणा लेकर कौतूहलवश बनाया है, व्यक्तिगत सम्बन्ध में स्थिर रह ही नहीं सकता।"

"यही तो तुम लोगों का भ्रम है। विद्रोह का अर्थ मस्तिष्क का संतुलन खोना नहीं होता। अगर तुम अच्छाई में विश्वास करते हो तो उसके अस्तित्व को भी मानना ही होगा। आज के साहित्य में अगर कमजोरी है तो मजबूती भी है।"

"जी हाँ, मजबूती इस मानी में है कि खाद से ही स्वस्थ अंकुर फूटता है।"

"तुम लोग बिल्कुल एकांगी हो रहे हो। अगर यही हालत रही तो पता नहीं हमारा साहित्य रसातल में जाएगा या उससे भी नीचे 'प्रबल' जी कुछ क्षुब्ध होकर बोल रहे थे। लेकिन मुदन पर उसका उल्टा ही असर पड़ रहा था। उसने जरा मुस्कराते हुए जवाब दिया—

"मैं तो नीत्शे के उस सिद्धान्त में विश्वास करता हूँ कि "एक वृक्ष के विकास के लिए उसकी जड़ों का जमीन के नीचे, बिल्कुल पाताल में जाना भी उतना ही आवश्यक है जितना उसकी शाखाओं का ऊपर आकाश में फैलना।" हमारे महारथियों ने आकाश में उड़ने की संयमित प्रणाली को ही साहित्य का साधन और साध्य मान लिया और जड़ सूखती चली गई। नतीजा यह हुआ कि आज का साहित्य निश्चेष्ट है, 'लकवा' से पीड़ित है, जिन्दगी से दूर है।"

"तब तो तुम्हारे विचार में आज तक का साहित्य निष्प्राण है—उसमें कोई जान नहीं ?"

"आपने मुझे समझने में भूल की। मैं तो सृष्टि के प्रत्येक अणु को प्राणवान मानता हूँ। लेकिन प्राण को भी चेतना की लहर चाहिए, अनुभूति का साधन चाहिए। जिसके जीवन में नरक की आँधी कभी आई ही नहीं वह जिन्दगी का दर्द क्या समझेगा ? चन्द कवियों और कथाकारों को छोड़कर शेष सभी-के सभी बेजान हैं। उनके सामने सिद्धान्त का महल है और अध्ययन की सीढ़ी। लेकिन मैं उन्हें साहित्यिक नहीं मानता। क्योंकि वे आँखें सिकोड़कर अपने-आपमें रम जाते हैं और उपनिषद को ही जीवन का मापदण्ड मान लेते हैं। 'जो समस्त सृष्टि में अपने को देखता है और अपने में समस्त सृष्टि को देखता है वह किसी से घृणा नहीं कर सकता' "—भुवन बोलता-बोलता शायद यह भूल गया कि उसके सामने एक वयोवृद्ध साहित्यिक बैठे हैं। वह बोलता ही रहा—

"और ये उपनिषद्‌वादी ही समाज के उस विशाल समूह को नफ़रत की निगाह से देखते हैं जो समूह समाज की रीढ़ है, समाज का आधार है, जो समूह भूखा है, बेकार है, गुलाम है, अन्याय और विषमता का प्रतीक है। आज हमारे सामने हिन्दी के बहुत-से मौलिक और अनुवादित उपन्यास पड़े हैं लेकिन इन उपन्यासों के नायक या तो चोटी पर बैठे ज़मीन को घूर रहे हैं और हवा में हाथ-पैर चला रहे हैं या ज़मीन पर बैठे हैं और आकाश की हवा खा रहे हैं। हमारे उपन्यासों का नायक मद्रास से काश्मीर पहुँच जाता है, समूचे हिन्दुस्तान का चक्कर लगा आता है लेकिन उसे पैसे का अभाव कभी नहीं होता। भूख कभी नहीं लगती, क्योंकि उसकी जेब में गूलर का फूल होता है। हमारे कवि और नाटककार जिन्दगी से इतनी दूर हैं कि आज की ज़िन्दगी में सिद्धान्त के सिवा उन्हें आदमी दिखाई ही नहीं देता है और तब इतिहास का अंचल उठाकर मातृत्व स्नेह में दुबक जाते हैं। आज की

जिन्दगी उनके लिए सूनी है, कुछ नहीं है। पता नहीं, दरबार के विलासी वातावरण की चाटुकारिता, वाहवाही के लिए चमत्कार की उपासना रोम्यारोलाँ और अनातोले की देखादेखी हमारे हिन्दी साहित्य का कब तक गला घोंटे रहेगी।"

भुवन भावावेश में आ गया था। वह और कुछ कहना ही चाहता था कि रमाकान्त पहुँच गया। उसने आते ही पूछ दिया—

"क्या बहस चल रही है?"

"तुम्हारा भुवन तो बिल्कुल विद्रोही है।" 'प्रबल' जी मज़ाक के स्वर में बोल उठे।

भुवन ज़मीन की ओर देख रहा था। बहस में उलझ जाने के कारण अपनी मानसिक स्थिति वह बिल्कुल ही भूल बैठा था, सो रमाकान्त को देखते ही वह अचानक मायूस होगया। भुवन को अपने-आपपर झुँझलाहट आ रही थी कि कहाँ तो वह आकस्मिक थपेड़ों से बिल्कुल विचलित हो रहा था और कहाँ अभी 'प्रबल' जी से उलझ पड़ा। उसकी भावुकता कितनी घातक है। रमाकान्त सोचेगा कि मोहन बर्खास्त कर दिया गया और भुवन अपनी बहस में ही मशगूल रहता है जैसे उस पर कोई असर नहीं। अभी कुछ देर पहले वह कितना उदास था और अब अकस्मात् ही मायूस होगया लेकिन बीच में वह अपने सिद्धान्तों का गरज-गरजकर पृष्ट-पोषण कर रहा था।...और यही सब सोचकर भुवन अचानक ही मायूस हो उठा। भावुकता की हद होगई। लेकिन इतना तो तय है कि भुवन भी खुश रहना चाहता है, वह जीवन की समस्याओं का शान्तिपूर्ण निदान चाहता है और अनजाने में ही मनुष्य की यह सार्वभौम प्रवृत्ति चेतनता को धोखा दे जाती है। आज की स्थिति में कोई भी बुद्धिवादी हृदयवादी या अन्य-वादी सुख की साँस नहीं ले सकता। अलबत्ता जो जीवन से दूर हैं जिन्हें भूख और बेकारी की समस्या परेशान नहीं करती, जिनके हृदय में मजबूरी की टेस नहीं पहुँचती है, वे अवश्य खुश हैं।...

"तुम कब आये ?" रमाकान्त ने खूँटी पर छाता टाँगते हुए पूछा।

"काफ़ी देर होगई।"

"ओ, तब तो 'प्रबल' जी से काफ़ी उलझ चुके होगे ?"

"नहीं भाई, मुझे तो आनन्द आ रहा था।" 'प्रबल' जी ने अपना अहंकार बचाते हुए कहा। भुवन के होठों पर हल्की-सी हँसी दौड़ गई। जिसमें नफ़रत झलक रही थी।

कुछ देर तक योंही इधर-उधर की बातें होती रहीं। चाय पी लेने के बाद 'प्रबल' जी टहलने चले गये। भुवन और रमाकान्त वहीं बैठे रहे कुछ देर तक, शाम हो चली थी। दोनों मित्र योंही खामोशी में उलझे रहे। भुवन ने महसूस किया कि रमाकान्त के भीतर कुछ मजबूरी है, कुछ द्वन्द्व है जिसे वह कहना नहीं चाहता। भुवन जानता था कि रमाकान्त एक भावुक युवक है जिस पर स्वार्थ की पतली लेकिन मज़बूत चादर तनी है। आरम्भ में कोई भी रमाकान्त से मिलता तो यही अनुमान लगाता कि यह एक भावुक, क्षुब्ध और ठोकर खाया हुआ युवक है। लेकिन बहुत दिनों तक साथ रहने के कारण भुवन समझ गया था कि रमाकान्त में कुर्बानी का मादा नहीं के बराबर है। किसी भी बात में रमाकान्त से उम्मीद करना व्यर्थ ही नहीं, घातक भी है। रमाकान्त अगर किसी की भलाई भी करना चाहे तो अपने स्वार्थ पर नज़र रखते हुए ही कुछ करेगा। और इस खयाल से वह विश्वासघाती तो नहीं लेकिन स्वार्थी ज़रूर है इसे भुवन अच्छी तरह जानता।

भुवन ने थाह पाने के विचार से कहा—

"मोहन के लिए कोई काम ठीक कर दो तो अच्छा है।"

रमाकान्त ने जैसे सुना ही नहीं। भुवन ने फिर कहा—

"तुम्हारे पत्र में ही अगर मोहन को काम मिल जाए तो बड़ा अच्छा हो।"

रमाकान्त अपना चश्मा साफ़ करता हुआ, सिर नीचा किए ही बोला—

"मेरे पत्र की हालत क्या तुमसे छिपी है। कांग्रेसी पत्र होने की वजह से चुनाव तक ही शायद छपे और इसके अलावा जो पाता है वही हुक्म चला देता है। रामनिवास जी को तुम जानते ही हो। वह एक नम्बर का जाहिल है। मुझे तो किसी से पटता भी नहीं। वृन्दा बाबू कुछ सभ्य भी हैं तो उन्हें फुर्सत ही नहीं मिलती कि प्रेस की हालत भी देख सकें। बिचारे कभी तो कलकत्ते रहते हैं तो कभी दिल्ली। अच्छा होता अगर तुम 'प्रबल' जी से बातें करते।" रमाकान्त ने चश्मा पहन लिया और भुवन का मुँह देखने लगा। भुवन समझ गया कि रमाकान्त मोहन की स्थिति से डर गया है। मोहन को साथी बनाना खतरा मोल लेना होगा। भुवन को हँसी आ-गई, लेकिन अपने भाव को छिपाकर उसने कहा—

"लेकिन 'प्रबल' जी तो मुझसे रंज हैं। मैंने उनकी रचना की कड़ी आलोचना कर दी है। अगर उन्होंने इन्कार कर दिया तो व्यर्थ पश्चा-त्ताप होगा।"

"फिर भी अगर तुमने 'प्रबल' जी से कह दिया तो शायद तुम्हारा अनुरोध वे टाल नहीं सकेंगे। मेरे यहाँ अभी दो-तीन जगहें हैं लेकिन पता नहीं क्यों, वृन्दाबाबू दिन टाल रहे हैं। हम लोगों को अतिरिक्त समय देना पड़ता है और जब—मैं उनसे कहता हूँ तो कोई-न-कोई बहाना बनाकर टाल जाते हैं।"

"अच्छी बात है, 'प्रबल' जी से ही कहूँगा।" भुवन को रमाकान्त के आकस्मिक परिवर्तन पर आश्चर्य हो रहा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि रमाकान्त अच्छा है या बुरा। उसने जरा सोचते हुए पूछा—

"उसके रहने का प्रबन्ध तो कर ही सकते हो?"

"हाँ, उसका प्रबन्ध होजाएगा।" रमाकान्त ने अपनी भवें फलकाते हुए कहा।

भुवन की इच्छा हुई कि वह रीता के बाबत सब-कुछ बता दे। क्योंकि

वह चाहता कि अपनी यह एकमात्र खुशी रमाकान्त पर प्रकट कर दे। जिन्दगी में प्रथम बार उसे एक सहारा मिला है और वह किसी चोटी पर खड़ा होकर दुनिया से, दुनिया में रहने वाली ईंट-पत्थर तक से अपनी प्रणय-विजय की गाथा कह सुनाना चाहता है। आज तक उसने दुःख-ही-दुःख झेले थे। आज तक उसे निराशा-ही-निराशा मिली थी। अभी तक वह रुखड़े यथार्थ से ही सामना कर सका था। लेकिन आज उसके मन में एक कोमल धारा बह रही है—शीतल, सुखद, उन्मादक। अब वह कुछ उम्मीद करने लगा है। कुछ ख्वाब देखने लगा है। कविता की तरलता में उसकी आँखें डूबने-उतराने लगी हैं। तो क्या वह रमाकान्त से अपना राज़ कह दे? नहीं, इस क्षेत्र में रमाकान्त के विचार सीमित हैं। रमाकान्त ने कई बार अपनी प्रेम-कहानी भुवन को सुनाई है। और उन कहानियों में कई नायिकाएँ आईं और गईं लेकिन रमाकान्त की निजी चादर तनी ही रही। इस क्षेत्र में रमाकान्त बिल्कुल 'फ्रायड' का अनुयायी है—वह भी विकृत रूप में। रमाकान्त त्याग को बेवकूफ़ी समझता है। वह भुवन को उपदेश देना शुरू कर देगा और हो सकता है इस पर भुवन बिगड़ जाए। अच्छा यही है कि वह रमाकान्त को कुछ भी नहीं कहे। ठीक है, वह रमाकान्त से कुछ भी नहीं कहेगा।

भुवन को चुप देखकर रमाकान्त ने मुस्कराते हुए पूछा—

"क्या सोच रहे हो?"

"कुछ नहीं, बनारस याद आ रहा था।"

"तुम मोहन को ठहराने की चिन्ता छोड़ो। उसे मैं ठीक कर दूँगा। बस एक बार 'प्रबल' जी से तुम कह दो।" रमाकान्त अपनी कमजोरी छिपाने के उद्देश्य से मुस्करा रहा था। इसके बाद बहुत देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। भुवन मन-ही-मन ऊब गया था। रात भी चढ़ आई थी। गीता प्रतीक्षा कर रही होगी। चलते समय उसने कहा था कि आज शाम

को वह चौपाटी की तरफ़ जाना चाहती है। भुवन ने बिना किसी शिष्टाचार के डेरे को राह पकड़ी।

जब भुवन अपने डेरे पर पहुँचा तो उसने सड़क पर से ही बिजली की रोशनी में देख लिया था कि बरामदे पर रीता खड़ी है और उसके दिमाग से मोहन की सारी चिन्ता अचानक ही गायब होगई। उसके होठों पर एक कोमल मुस्कान दौड़ गई। ऊपर पहुँचते ही भुवन भाँप गया कि मानिनी रूठी है। जब वह करीब पहुँचा तो रीता ज्यों-की-त्यों क्षितिज की ओर देखती रही जैसे किसी के आने की आहट तक भी उसे मालूम नहीं। भुवन ने धीरे से पुकारा। लेकिन रीता फूली रही। भुवन ने ज़रा हँसते हुए कहा—

"चौपाटी चलना था न? चलो, घूम आवें।"

"क्यों?"

"...!"

"अच्छा ग़लती हुई, अब देर नहीं करूँगा। अब तो मान जाओ।" लेकिन रीता रूठी ही रही। जब सब उपाय से भुवन निराश होगया तो उसे भी शरारत सूझी। वह अपने कमरे में आया और वहाँ से चिल्लाकर बोला—

"भीतर से मेरी कमीज़ ला दो। मुझे बाहर जाना है।" फिर भी रीता खड़ी-की-खड़ी रही। भुवन बाहर आया और बोला, "मैं इस मकान में नहीं रहूँगा। मेरी कमीज़ ला दो, मैंने रमाकान्त के साथ टिकने का प्रबन्ध कर लिया है।"

रीता को विश्वास होगया। वह भुवन की ओर मुड़ गई। दोनों की आँखें मिलीं भी नहीं कि भुवन की शैतानी पकड़ी गई। वह हँस पड़ा। रीता ने मान-भरे शब्दों में कहा—"चले जाइए न। धमकाते किसे हैं? ला दूँ कमीज़?"

भुवन निहाल होगया जैसे। वह रीता के पास पहुँच गया और पूछा—

"भाई साहब कहाँ हैं ?"

"डॉक्टर के पास गये हैं।"

"तो चलो चौपाटी से घूम आवें।" और भुवन रीता की कलाई पकड़े सड़क पर खींच लाया। रीता ने सकुचाकर कलाई छुड़ा ली और दोनों वर्ली चौपाटी की ओर चल पड़े। टहलने का समय गुजर चुका था फिर भी दोनों में से किसी को भी इसकी चिन्ता नहीं थी।

चौपाटी पर अभी काफ़ी भीड़ थी। कुछ लोग तो टहल रहे थे लेकिन ज्यादा तायदाद बैठकर समुद्र के सौन्दर्य देखने वालों की ही थी। रीता और भुवन चुपचाप चल रहे थे। भुवन आनन्द से खोया-खोया-सा चल रहा था। कभी-कभी दोनों एक-दूसरे से सट जाते। भुवन की आँखें मुँद जातीं। भुवन सोचता—क्या नारी के संसर्ग में इतना माधुर्य है, इतना नशा है, इतना सुख है ? क्या नारी के अभाव में पुरुष जिन्दा भी रह सकता है ? रीता से उसकी देह छू जाती है और भुवन के मस्तिष्क तक कुछ सनसनाता गुजर जाता है। रीता...लक्खी...भाभी कितना अन्तर है ? जीवन और मृत्यु की तरह। तीनों में महान अन्तर। रीता...आज एक युवती उसकी बगल में, बिल्कुल सटकर चल रही है। और वह दिन-भर की सभी थकान सारी चिन्ता भूल बैठा है। क्या अब उसकी जिन्दगी इसी तरह बनी रहेगी ?... भुवन अपनी मदहोशी में बहा जा रहा था कि बिजली के एक पोल के सहारे खड़े एक रहस्यपूर्ण आदमी पर उसकी नज़र पड़ी। भुवन को लगा कि वह पहचाना हुआ-सा लगता है। रात में भी उस आदमी ने गोगल्स लगा रखी थी। बूशर्ट और पैंट के अलावा उस आदमी के सर पर एक काली टोपी थी। लेकिन इस आदमी को कहाँ देखा है ?...भुवन याद नहीं कर सका। वह आदमी भी भुवन की ओर ही देख रहा था। जब रीता और

भुवन उस पोल के करीब पहुँचने लगे तो वह आदमी वहाँ से हट गया जैसे वह बिल्कुल स्वाभाविक ढंग से टहलता हुआ हट गया हो। भुवन को लगा कि उसने उस आदमी को ज़रूर कहीं देखा है। लेकिन कहाँ देखा है, यह सोच नहीं पाता।

काफ़ी देर तक रीता और भुवन समुद्र के किनारे बैठे रहे। दोनों में बहुत कम बातें होतीं। जैसे दोनों एक-दूसरे की मूक-भावना समझ रहे थे। दोनों जैसे एक-दूसरे की वेदना और बेकली का अन्दाजा लगा रहे थे। लेकिन दोनों ही आनन्द में डूबे थे। समुद्र में हल्की-हल्की लहर तिर रही थी। बड़े-बड़े जहाजों की आवाज़ भी सुनाई पड़ती। पीछे से हड़हड़ाती हुई मोटरें गुज़र जातीं। दोनों काफ़ी रात गए घर लौटे।

: १६ :

कई रोज़ बीत गए। दिन-भर तो भुवन कार्यालय में काम करता और फ़ुर्सत पाते ही डेरे लौट आता। चुटकियों में समय कटता जा रहा था। कभी-कभी भुवन को अपनी बीती बातें याद आतीं और वह झल्लाकर उन्हें भूल जाता। कभी तो भुवन काँप जाता कि उसकी पिछली ज़िन्दगी कितनी भयावह थी और कभी हँसी आ जाती और कँधा सिकोड़कर अपने काम में लग जाता। लेकिन रामू को वह अभी तक भूला नहीं था। पता नहीं रामू और मदन कहाँ होंगे। बेचारों की ज़िन्दगी कितनी दर्दीली है। कितनी खतरनाक। न जाने वैसे ही और कितने इन्सान आज गलियों का चक्कर काट रहे होंगे। और समाज ज्यों-का-त्यों चलता चला जा रहा है—समाज, जो व्यक्ति के सहयोग और सहानुभूति पर टिका है। समाज, जिसका निर्माण व्यक्ति की पूर्णता और मोक्ष के लिए हुआ है। और रामू आज के समाज की पूर्णता का प्रतीक है। लक्खो जो किसी पुरुष की संगिनी होकर समाज के विकास में योग दे सकती थी, आज नरक में पाँव डाले स्वर्ग का ख्वाब देख रही है......

लेकिन भुवन इन बातों को दुहराना नहीं चाहता। फिर भी उसका हृदय अचानक ही कराह उठता, नफ़रत से भर जाता और क्रोध से उसकी भवें तन जातीं। लेकिन किस पर?...कोई देखनेवाला नहीं, सुननेवाला भी नहीं। और तब वह उदास हो जाता। रीता पूछती और भुवन सब-कुछ कहता—जी खोलकर कहता। रीता भी धीरे-धीरे समाज और देश की कुव्यवस्था से परिचित होती जा रही थी।

देश में आज़ादी की घोषणा हो चुकी थी। और समूचे देश में राष्ट्रीयता और मजहब का धुँआ छा गया था। हवा भी सहमी-सहमी साँस ले रही थी। अजीब वातावरण था—उन्मादक, जहरीला मनहूस, भयावह। भुवन ने महसूस किया कि देश पर कोई भयानक विपत्ति आने वाली है। उसने रीता को बताया और पत्रों में लिखा कि नेता ग़लती कर रहे हैं। आज़ादी जनता की चीज़ है। देश जनता का है। बिना जनता की राय लिये ही तथाकथित न्याय और सचाई के नाम पर देश का बँटवारा कर देना देश के भाग्य को फोड़ देना होगा। मज़हब के नाम पर राजनीतिक दाव-पेंच इन्सानियत का गला घोंट देंगे। लेकिन कौन सुनता है ? जनता जाहिल है, लेखक अन्त-र्मुखी और उच्छृंखल हैं, नेता त्यागी हैं।

भुवन जब कभी अपने साथियों के साथ बैठता, इन बातों का जिक्र करता। रमाकान्त कुछ नाप-तोल के बाद भुवन के तर्कों को क़बूल कर लेता और मोहन हाँ में-हाँ भर मिला देता। मोहन को बम्बई आये एक महीना हो चला था। 'प्रबल' जी ने कृपा की थी और उन्हीं के पत्र में मोहन काम करने लग गया था। रमाकान्त की कोठली में ही मोहन टिक रहा था।

आज सवेरे ही भुवन कार्यालय से लौट आया। उसकी तबीयत कुछ ठीक नहीं थी। विनोद जी कार्यालय में ही रुक गए और उन्हीं के जिम्मे बाक़ी काम छोड़कर भुवन डेरे चला आया। रीता भुवन की कोठली में ही बैठी गलेबन्द बुन रही थी। भुवन को देखते ही आश्चर्य से वह खड़ी हो-गई। आज पहला मौक़ा है कि भुवन इतने सवेरे कार्यालय से चला आया है। रीता ने कौतूहल से पूछा—

"क्यों, आज बहुत सवेरे चले आये ?"

"हाँ, तबीयत ठीक नहीं है।" भुवन की आवाज़ भर्राई हुई थी। रीता ने भुवन का हाथ टोकर देखा तो सन्न रह गई। भुवन को काफ़ी बुखार चढ़

आया था। रीता घबरा-सी गई। हालाँकि उसके भाई विनोद बाबू रोज ही बीमार रहते हैं। लेकिन रीता का मन ऐसा कभी नहीं हुआ था जैसा कि आज हो रहा था। उसने भुवन का बिस्तर लगा दिया और एक विदुषी नारी की तरह भुवन के सिरहाने बैठकर उसका सिर सहलाने लगी। भुवन आँखें बन्द किये लेटा रहा। बुखार से भुवन का शरीर तप रहा था। लेकिन आज-जैसा सुख उसे कभी नहीं मिला था। भुवन का रोम-रोम पुलकित हो रहा था कि नारी के सहवास से पुरुष को सन्तोष क्यों होता है? वह सोच रहा था कि इसी तरह वह जिन्दगी भर बीमार रहे और रीता की काँपती कोमल अंगुलियाँ उसे सहलाती रहें। लेकिन बीमार होकर वह अकर्मठ बना रहेगा। जिन्दगी की राह पर तो इससे भी भयंकर कठिनाइयाँ आती हैं, इससे भी ज्यादा तपन होती है। शरीर टूक-टूक हो जाता है। अगर रीता इसी तरह बराबर साथ रही तो क्या जिन्दगी की कोई भी तकलीफ़ वह महसूस कर सकेगा? अगर रीता उसके साथ रही तो क्या किसी तरह की बाधा भुवन को कमजोर बना पायेगी? रीता कितनी कोमल है कितनी बड़ी शक्ति? काश, रीता उसकी......।

"सो गये?" रीता ने धीरे से कान के पास मुँह सटाकर पूछा। रीता समझ रही थी कि भुवन सो गया है। भुवन ने सिर जो घुमाया तो रीता के मुलायम और ठंडे गाल से भुवन के होठों का स्पर्श होगया। भुवन की आँखें फिर मुँद गईं। रीता चौंककर पीछे हट गई। भुवन ने आँखें बन्द किए ही रीता को पुकारा—

"रीता...।"

"कहो...।"

"तुम इतनी परेशान क्यों होती हो? मैं तो तुम्हारा कोई नहीं होता।"

....

"बोलो, चुप क्यों हो?"

"मैं कहाँ परेशान होती हूँ।" रीता ने हकलाते हुए कहा।

"मेरे पास बैठी हो, मेरी सेवा कर रही हो...।" भुवन लेटा हुआ आँखें बन्द किये ही बोल रहा था।

रीता ने थोड़ा हँसते हुए कहा—"अच्छा होने पर पैसे दे देना। मैं तो चाकरी कर रही हूँ।"

"बस, केवल पैसे ही ? और कुछ नहीं ?"

"ऊँहूँ।" रीता ने मुस्कराते हुए सिर हिला दिया। भुवन ने आँखें खोल कर देखा, रीता उसके चेहरे पर झुकी हुई है। दोनों की आँखें मिल गई। भुवन चाह रहा था कि वह अपनी दोनों आँखें रीता की दोनों आँखें में डाल दे। लेकिन लाख कोशिश करने के बाद भी उसकी दोनों आँखें रीता की एक आँख से ही मिल पातीं। अन्त में भुवन की आँखे रीता के पतले-पतले रक्तिम अधरों पर आकार टिक गई जो पंखुरियों की तरह काँप रहे थे जैसे कुछ कहना चाहते हों। उफ्...... कितना नशा है इनमें, कितनी जलन है, कितना आनन्द, कितना सम्मोहन। भुवन अपनी दोनों तलहथी से रीता का समूचा चेहरा टटोलने लगा, और फिर रीता को अपनी ओर खींच लिया, अपनी काँपती हुई भुजाओं में समेट लिया। दोनों काफ़ी देर तक योंही लिपटे रहे। भुवन को बड़ा आराम मालूम पड़ रहा था कि अचानक उसके ध्यान में आया, अगर रीता ने साथ छोड़ दिया तो ? भुवन की तकदीर फूटी हुई है, इसलिए कोई उसके साथ टिक नहीं सकता है। आनन्द क्षणिक है और पीड़ा अमर है। लेकिन नहीं। रीता को वह भूल नहीं सकता। रीता उसकी रग-रग में बस गई है। रीता की विचित्र भंगिमाएँ भुवन की आँखों में रम गई हैं, छाई रहती हैं। किसी की यादगारी ही बेक़रारी की जिन्दगी है। नहीं-नहीं, वह रीता को नहीं भूल सकता।......

भुवन ने रीता के दोनों कन्धों को पकड़कर ऊपर उठाया। रीता लाज

से गड़ी जा रही थी। भुवन ने धीरे से काँपती आवाज़ में कहा—

"एक बात पूछूँ?"

"कहो।" रीता भुवन की कमीज़ का बटन खोल रही थी।

"विनोद बाबू से तुम्हारे बारे में ज़िक्र करूँ?"

"क्या?"

"यही...कि मैं...तुमसे शादी करना चाहता हूँ।"

रीता ने भुवन की छाती में अपना मुँह छिपा लिया। वह लाज से सिकुड़ गई। भुवन रीता की पीठ सहलाता रहा। शाम हो चुकी थी। खिड़की की राह भुवन ने देखा कि बाहर घना अन्धकार है और बिजली के बल्ब व्यर्थ अन्धकार से लड़ने की धृष्टता कर रहे हैं। वातावरण गहरा था फिर भी अजीब सूना-सूना लग रहा था—अजीब खूँखार और भुवन अपनी आँखें बन्द कर लेता। प्रकृति भी उसके प्रतिकूल है। उसने कसकर रीता को अपने कलेजे से चिपका लिया।...अन्धकार सिमट रहा था।

भुवन को अच्छा होते-होते आठ-नौ रोज़ लग गये। आज बारहवाँ दिन था। अब वह कुछ चलने-फिरने भी लगा था। शाम हो आई थी लेकिन विनोद बाबू अभी तक कार्यालय से नहीं लौटे थे। बरामदे में बैठा वह सौंफ़ खा रहा था और सोच रहा था कि आज वह ज़रूर विनोद बाबू को सारी बातें बता देगा। विनोद बाबू अच्छे आदमी हैं। और तब वह रीता के साथ घर जाएगा कुछ दिनों के लिए—केवल कुछ दिनों के लिए। रीता...

भुवन अपनी ही कल्पना में डूबा था। उसे पता भी नहीं चला कि विनोद बाबू कैसे और कब फ्लैट पर चले आये। भुवन ने ज़रा उत्कंठा से पूछा—

"क्या पत्रिका निकल गई!"

"हाँ!" विनोद बाबू अत्यधिक अनमना होकर बोल रहे थे। भुवन कुछ समझ नहीं सका। उसने सोचा शायद इस सप्ताह की पत्रिका अच्छी नहीं

निकली। उसने जरा और आतुरता से पूछा— "इस सप्ताह का अंक नहीं लेते आये ?"

"नहीं।" विनोद बाबू के संक्षिप्त उत्तर से भुवन अवाक् था! आज विनोद बाबू अजीब उखड़े-उखड़े-से बातें कर रहे थे। इतने दिनों में आज पहला ही मौका है जब विनोद बाबू इतने उदास हैं। उन्होंने एक कुर्सी खींचकर बैठते हुए कहा—

"मैं एक सूचना देने आया हूँ।"

"कहिए!" भुवन भी आवश्यकता से अधिक गम्भीर हो गया था!

"किसी वेश्या की हत्या के अभियोग में आपको जेल हुई थी। पुलिस अभी भी आपका पीछा कर रही है। आज कार्यालय में एक आदमी आपको ढूँढने आया था, उसी से पता चला।"

भुवन के भीतर अचानक ही वेदना का तूफ़ान उठा और दब गया। वह चुपचाप बैठा रहा। आकस्मिक यातनाएँ सहने का वह आदी हो गया था। विनोद बाबू ने कहना शुरू किया—

"आपके साथी जो बनारस जेल से फ़रार हैं इन दिनों बम्बई में ही रह रहे हैं।"

विनोद बाबू ने 'आपके साथी' पर जरा जोर देकर कहा। भुवन ने ग़ौर किया कि जब विनोद बाबू के मुँह से 'आपके साथी' शब्द निकला तो उसके साथ एक तीखी अस्पष्ट हँसी भी निकली। अब विनोद बाबू के सामने कुछ भी सफ़ाई देना व्यर्थ होगा। फिर भी वह रीता को सब-कुछ बता देना चाहता है। विनोद बाबू की उसे कतई परवाह नहीं। लेकिन रीता उसकी है। वह रीता का है। लेकिन...नहीं—रीता को यह सब-कुछ सुनकर दुःख होगा। वह रीता से भी कुछ नहीं कहेगा। रीता उसकी ज़िन्दगी में आई और वह उसे सम्हाले रहेगा। उसकी ज़िन्दगी में अभी बहुत कुछ आने वाला है, बहुत कुछ आ चुका है। जो आचुका है वह विनोद बाबू के लिए घृणित है। जो

आने वाला है, उसके लिए विनोद बाबू घृणित होंगे। लेकिन वास्तव में कोई घृणित नहीं। सभी दुरुस्त हैं, सभी पाक हैं। भेद खोल देने पर ही पाप या पुण्य सजीव होता है। उसने तय किया कि वह विनोद बाबू से अनुरोध करे कि रीता से वह कुछ भी नहीं कहें। ज़रा सहमते हुए उसने कहना चाहा...

"रीता से—"

"रीता का नाम मत लीजिए। वह एक भले घर की लड़की है।" विनोद बाबू बीच ही में गरज उठे। भुवन के कलेजे की गति रुक गई। वह खून का घूँट पीकर रह गया। रीता चाय बनाने गई थी। विनोद बाबू का अन्तिम वाक्य रीता के कान में अचानक ही घुस गया जब वह चाय लेकर दरवाजे तक पहुँच चुकी थी। भुवन ठीक उसके सामने ही बैठा था। रीता को देखते ही भुवन उठा। क्षण-भर खड़ा रहा रीता की ओर देखता हुआ। रीता विस्फारित आँखों से भुवन को देख रही थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि आखिर यहाँ कौन-सी घटना घट गई है अचानक। और भुवन के चेहरे पर ममता, प्रेम, मजबूरी और क्रोध उबल रहा था। उसने अन्तिम बार रीता की ओर भरी-आँखों से देखा और धड़धड़ाता हुआ ज़ीने से नीचे उतर गया।

सड़क पर बत्तियाँ जल चुकी थीं।

वर्लीचाल में सवारियों की उतनी सरगर्मी नहीं रहती जितनी कि बम्बई के अन्य मुहल्लों में। यहाँ अधिकतर निम्न और मध्यवर्गीय समाज के लोग रहते हैं। जिन्हें घूमने की अपेक्षा काम करने में ज्यादा आनन्द मिलता है। सड़क पर अन्धकार भटक रहा था—बिजली की रोशनी से लुकता-छिपता। भुवन का हृदय फटा जा रहा था। पीड़ा से उसकी नसें फटकर बह जाना चाह रही थीं। जब वह अपने गाँव से चला था उस समय भी इतनी वेदना नहीं हुई थी जितनी वेदना कि आज एक पराये घर को छोड़ने पर हो रही

थी। पराया घर, जहाँ उसकी अपनी रीता रहती है। भुवन की इच्छा हो रही थी कि वह कलेजा फाड़कर रोये, लेकिन रो नहीं पा रहा था। रीता क्या सोचती होगी...आज ही उसने रीता से ब्याह की बात चलाई थी। आज शाम तक वह अजीब मनसूबे बाँध रहा था—अजीब-अजीब तस्वीरें बना रहा था। और अभी कुछ नहीं केवल दुःख, पश्चाताप, कुढ़न, वेदना और मजबूरी! उसे अपनी चिन्ता नहीं है। वह तो जीवन में कष्ट झेलने का आदी हो हो गया है। लेकिन रीता? रीता उसे प्यार करती है। सम्भव है रीता ने प्यार को ही साध्य मान लिया हो! रीता उसके वियोग में ज़िन्दा नहीं रह सकेगी। रीता कुढ़-कुढ़कर मरेगी और वह कहीं मस्ती से घूमता रहेगा।

बार-बार भुवन सोचता कि वह कहाँ जाए, लेकिन कुछ तय नहीं कर पाता। उसे अभी रमाकान्त के यहाँ भी शान्ति नहीं मिलेगी। उसे कहीं शान्ति नहीं मिल सकती। उसका जीवन ही वेदना की जड़ है। आज तक उसने सुख की अमरता नहीं जानी। आज तक उसे जीवन का स्थायित्व नहीं मिला। जीवन व्यर्थ है...जीवन जंजाल है। जीवन साध्य है, कम-से-कम आज के युग में और साधन के अभाव में साध्य की कोई कीमत नहीं। वे झूठे हैं जो जीवन, समाज या देश के विकास और पूर्णता में विश्वास करते हैं। विकास की कोई कीमत नहीं। पूर्णता का कोई महत्त्व नहीं और साध्य तो ठोस सत्य हुआ करता है। फिर विकास या पूर्णता की गुंजाइश ही कहाँ है? अजीब भ्रम है। अजीब जीवन है—धुँधला, अस्पष्ट, क्षणिक, दुःख और पश्चात्ताप से घुँटता हुआ, जलता हुआ भूला! भुवन ने चौपाटी की राह पकड़ी। अब वह विनोद बाबू के यहाँ लौटकर नहीं जायगा। ये सब ऐसी नाक वाले हैं जिन्हें कौओं की चिन्ता ही अधिक है, नाक की कम। उनकी पत्रिका के लिए मैंने क्या नहीं किया? आज 'रागिनी' चमक उठी है। लेकिन इन लोगों की आँखों का पानी सूख गया है। आँख है

ही नहीं, केवल कान-ही-कान हैं, जो चाहे पकड़कर घुमा दे। बेचारे विनोद बाबू क्या जानने गए कि जीवन की गहराई में उतरने पर हीरे के अलावा कोयला ही अधिक मिलता है।

भुवन समुद्र के किनारे पहुँच गया। आज उसके जीवन में ज्वार उठ रहा था। जहर से जहर खत्म होता है। वेदना से वेदना मिटती है। पीड़ित ही पीड़ित की आह को समझता है। भुवन ने सोचा कि इन लहरों में ही उसे त्राण मिल सकेगा। आज तक वह समाज के बीच रहा। उसने समाज की भलाई के लिए ही अपनी योग्यता और क्षमता का व्यय किया। लेकिन क्या हुआ? भुवन को क्या मिला?...और समाज अभी ज्यों-का-त्यों चला जा रहा है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं।...नहीं...उसे जिन्दा रहने का कोई हक नहीं। वह बराबर रोता ही रहा है। रामू ने रूपिया की हत्या कर दी थी, क्योंकि रूपिया जीवन-भर वेदना से घुट-घुटकर मरती और रामू ने यह सोचकर कि रोने वालों को जिन्दा रहने का कोई हक नहीं, उसकी हत्या कर दी। भुवन को भी मर जाना चाहिए। बम्बई आने के बाद, वह सोचता था, कि उसकी जिन्दगी आराम से कटेगी। लेकिन नहीं। आज की स्थिति में कोई भी प्रतिभाशाली, स्वाभिमानी व्यक्ति, जिसे क़िस्मत मौका नहीं दे, आगे नहीं बढ़ सकता। भुवन को लग रहा था कि उसे मृत्यु बुला रही है। खूबसूरत परियों की शक्ल में मृत्यु-दूतिका समुद्र की लहरों पर नाचती हुई, अस्पष्ट क्षितिज में खेल रही है। भुवन उन दूतिकाओं से लिपट जाना चाहता है। एक बार लक्खी से भी लिपट जाने की उसे तबीयत हुई थी। वहाँ भी मृत्यु ही थी। आज रीता से वह लिपटा था। आह, कितना आनन्द था, कितना सुख! तभी तो आज मरण-सी वेदना हो रही है। अगर रीता उसके जीवन में नहीं आई होती तो वह अधिक सुखी रहता। कम-से-कम इतना दुख तो नहीं होता।

भुवन धीरे-धीरे समुद्र की ओर बढ़ने लगा। आज जीवन की समस्त

इच्छाओं के साथ वह लहरों में लय होजायेगा। चौपाटी में बहुत से लोग इधर-उधर घूम रहे थे। कुछ लोग बैठे हुए लहरों का आनन्द ले रहे थे। भुवन का ध्यान कभी-कभी इन आनन्द लेने वालों पर जाता और फिर बिना परवाह किये वह आगे बढ़ जाता। उसके दिल में प्रतिशोध और घृणा की आग जल रही है। उससे समुद्र का पानी खौल उठेगा और तब आनन्द लेने वाले इन बेजान जानवरों की खूबसूरत देह झुलस जायेगी...कुछ ही देर के बाद वह समाप्त होजायेगा और उसका घर, उसकी लक्खी, उसका रामू, मोहन, रमाकान्त और उसकी रीता पीछे छूट जाएँगे।

"भुवन!" ...भुवन चौंक उठा। सिर घुमाकर जो देखा तो वही नौजवान जिसे रीता के साथ घूमने आने पर भुवन ने एक रोज चौपाटी में ही देखा था, गोगल्स लगाये खड़ा है। उस आगन्तुक ने हँसते हुए कहा—"तुमने पहचाना नहीं?" और उसने आँख पर से गोगल्स हटा दिया। भुवन आँखें फाड़-फाड़कर देखता रह गया। यह तो मदन है। खुशी की अचेतनता में भुवन सारी वेदनाएँ भूल गया और मदन से लिपट गया। आसपास के दो-चार आदमियों ने घूरना शुरू किया तो मदन ने धीरे से कहा—"यहाँ से चलो। यह ठीक जगह नहीं।"

"लेकिन...।"

"मैं सब-कुछ जानता हूँ। चुपचाप मेरे साथ चले चलो।" भुवन कुछ बोल नहीं सका। मदन के पीछे-पीछे मेन रोड पर आगया। मदन ने एक टैक्सी की और ड्राइवर को चर्च गेट चलने का आदेश देकर भुवन से बातें करने लगा। मदन ने बताया कि रामू उसे एक बार देखना चाहता है। इसलिए आज वह भुवन के कार्यालय गया था। लेकिन खुफिया-विभाग के एक कर्मचारी को वहाँ बैठा देखकर बरामदे में ही रुक गया। वह खुफिया विनोदजी से रामू की बाबत बातें कर रहा था तभी वह समझ गया कि अब भुवन की इस कार्यालय में गुजर नहीं। मदन ने यह भी बता दिया कि

रामू भी इन बातों को जानता है। वह कार्यालय से सीधे रामू के पास ही गया और रामू के कहने पर ही वह यहाँ आया है। मदन बहुत देर से विनोदजी के फ़्लैट से ही भुवन का पीछा कर रहा है।

चर्च गेट स्टेशन पहुँचने पर ड्राइवर ने गाड़ी रोक दी। दोनों पैदल ही चलने लगे। बिल्कुल गन्दा मुहल्ला था। सड़क के किनारे गन्दे-भद्दे मकान थे और दरवाज़ों में छड़ें लगी थीं। भुवन इस मुहल्ले में कभी नहीं आया था। बीच-बीच में पान की छोटी-छोटी दूकानें थी और छड़ों के भीतर बीभत्स महिलाएँ बन-सँवरकर बैठी हुई थीं। भुवन समझ गया कि यह वेश्याओं का मुहल्ला है। रामू को और शरण ही कहाँ मिलती !

राह चलने वाले मुसाफ़िरों को सड़क के किनारे रहने वाली औरतें कहीं जबरदस्ती न खींचकर ले जाएँ—शायद इसीलिए उनके मकानों में छड़ लगा दिये गए थे। सरकार ने बड़ी कृपा की थी, प्रजातन्त्रात्मक साम्राज्य-वादी सरकार से और उम्मीद ही क्या की जा सकती है। गन्दगी को ढँक दो, समाज स्वर्ग होजाएगा।...एक भद्दी-सी मोटी औरत ने भुवन और मदन को देखकर मुस्करा दिया और जब मदन ने भी मुस्कराहट का उत्तर मुस्कराहट से ही दिया तो उस औरत ने अजीब ढँग से अँगूठा दिखाकर आँख मार दी। भुवन नफ़रत से सिहर गया। यह हमारा समाज है, हमारा देश है और यही हमारे देश की माँ-बहनें हैं जो मांस-पिंड के अलावा और कुछ नहीं। सड़क पर सिनेमा टाइप शोहदे चक्कर लगा रहे थे। कुछ रईस दुक्के-दुक्के घूम रहे थे। भुवन ने महसूस किया कि वह भी एक गन्दा, वासनामय और ओछा आदमी है—इस सड़क पर चलने वाले उसे देखकर यही समझते होंगे कि यह भी अपनी पैशाचिक भूख ही मिटाने आया है। अगर रीता ने उसे देख लिया तो ?...भुवन साफ़ कपड़ों में भी अपने को घिनौना पा रहा है। लगता था कि उसकी सारी योग्यता, सारा तेज, सभी

प्रतिभा खत्म हो गई है और वह भी एक साधारण कोटि का आवारा है... एक विपासित !

एक मकान की बगल से दोनों एक गली में घुस गए। वहाँ बिल्कुल अन्धकार था।

बदबू से दिमाग फटा जा रहा था। भुवन के पैर से एक खाली बोतल टकरा गई। मदन हँसने लगा और बोला—

"समाज से कितनी दूर रहते हो तुम पढ़े-लिखे लोग !"

भुवन को यह व्यंग्य बुरा नहीं लगा। कुछ देर तक योंही चलने के बाद मदन एक जगह रुक गया। भुवन ने गौर से देखा तो पता लगा कि यहाँ किसी मकान का दरवाजा है। तीन-चार बार थपकी देने के बाद दरवाजा खुला और दोनों मकान में दाखल होगए। आँगन में करीब-करीब अंधेरा ही था। भुवन ने अनुमान लगाया कि पाँच-छः कोठरियों का यह मकान भी तिलस्मी ही है। दाहिनी तरफ़ की कोठरी के दरवाजे सटाए हुए थे। मदन उन्हें धकेलकर भीतर गया लेकिन वहाँ भी कुछ नहीं ! बहुत कम पावर का एक बल्ब उस कमरे में रो रहा था जिसके चारों ओर मकड़े ने प्रेम और दया बो दी थी। कोठरी की बाँई ओर एक दरवाजा लगा था जिसे थपथपाने पर एक आदमी ने खोल दिया। दरवाजा खुलते ही भुवन ने देखा सामने रामू बैठा है दीवार से सटा हुआ और सिगरेट पी रहा है। कमरा काफ़ी बड़ा था जिसमें एक बड़ी-सी गन्दी दरी बिछी हुई थी। वहाँ रामू के अलावा भी बहुत से लोग बैठे थे। भुवन को देखते ही रामू उठ खड़ा हुआ और हँसता हुआ भुवन की ओर दौड़ा—

"तुम आ गए ?" यह कहते हुए रामू ने भुवन के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये भुवन भूल गया कि इसी रामू के साथ चलने से उसका जीवन आज इस तरह जर्जर और मायूस हो रहा है। परोक्ष में कभी-कभी भुवन को रामू से घृणा हो आती थी। रामू ने भुवन को अपने बगल में बैठाते हुए कहा—

"ये हरामजादे पुलिस वाले मेरे पीछे भले आदमियों को भी परेशान करते हैं। नामर्द, इन्हें पता नहीं कि आगे क्या होने वाला है। ये सब साले दिन काटते हैं। इनके पास रत्ती-भर भी दिमाग नहीं है। बेवकूफ़ हैं।"...रामू न जाने इन पुलिस वालों को कितनी गालियाँ दे गया। कुछ देर के बाद उसने मदन से कहा—

"मदन, ऊपर वाली कोठरी में भुवन के रहने का प्रबन्ध कर दो। वहाँ पर थोड़ा एकान्त भी है।"

"लेकिन मैं यहाँ नहीं रहूँगा।"...भुवन ने सकपकाते हुए कहा।

रामू ने धीरे से सिर घुमाकर भुवन की ओर देखा और मुस्करा कर पूछा—

"तो कहाँ रहोगे?"

"कहीं चला जाऊँगा।"

"तो जब तक उस 'कहीं' का ठिकाना नहीं मिलता, ऊपर वाली कोठरी में रहो। वहाँ किसी तरह की तकलीफ़ नहीं होगी। घबराओ नहीं। तुम्हारी किस्मत भी हम लोगों के साथ ही कुछ हद तक बँध गई है।" रामू फिर मुस्करा रहा था।

कुछ देर तक भुवन वहीं पर बैठा रहा। रामू अपने साथियों के साथ बातें करता रहा। देसी शराब की कुछ बोतलें भी आ गई थीं। उन लोगों की बातचीत से भुवन को यही पता चला कि परेल में मुसलमान बहुत ज्यादती कर रहे हैं।

अमुक सेठ की राय है कि वहाँ से मुसलमानों को खत्म ही कर दिया जाय। पुलिस अफ़सर राघवन भी एक रोज़ सेठ से कह रहा था कि हिन्दू सब नामर्द हो गए हैं। ऐसे मौकों पर तो क़त्लेआम मचा देना चाहिए। रामू चुपचाप उन लोगों की बातें सुनता जा रहा था। अन्त में रामू ने गिलास खाली कर दिया और सिगरेट का धुआँ आकाश में उड़ाकर, उसे देखते हुए रामू ने ख़ूनी आवाज़ में कहा—

"मुझे मुसलमानों की ज़्यादती से कोई मतलब नहीं। लेकिन कत्लेआम तो मचेगा ही, भले वह सेठ का हो, राघवन का हो या मुसलमानों का हो।" भुवन ने आज बहुत दिनों के बाद रामू को देखा है। और रामू की खूनी शकल भी भुवन भूल चुका था लेकिन इस बात को कहते समय रामू का वह कटा चिह्न फिर उभर आया। भुवन समझ गया कि रामू अब ज्यादती करेगा।

रात काफ़ी हो गई थी। रामू ने भुवन की लटपटाई आँखों को देखकर कहा—"भुवन, अब तुम ऊपर जाओ। वहीं खाना भी पहुँच जाएगा। मैं तो अभी बैठूँगा। मुझे तो शायद जिन्दगी-भर सुख की नींद नसीब न हो। एक पाप करने के बाद पुण्य की राह ही बन्द हो जाती है। मैं क्या कर सकता हूँ। जाओ, तुम खाकर सो रहो," और इतना कहकर रामू ने मदन को इशारा किया। भुवन चुपचाप मदन के पीछे हो लिया। वह रात-भर रामू के वाक्यों को तौलता रहा—'मुझे तो शायद जिन्दगी....एक पाप करने के बाद पुण्य की राह...उफ्! कितनी वेदना थी रामू के कथन में—कितनी सत्यता थी!

: २० :

रात-भर भुवन रामू के मकान में रहता और और दिन-भर समाचार पत्रों के दफ़्तरों के दरवाज़े खटखटाता फिरता। लेकिन उसे कहीं भी जगह नहीं मिली। सभी पत्र वाले भुवन को जानते थे। कुछ ने तो इसलिए इन्कार कर दिया कि भुवन बहुत ज्यादा योग्य है उसकी योग्यता के अनुकूल उन लोगों के पास पैसे नहीं हैं, और बहुत से सज्जनों को यह पता लग गया था कि भुवनजी चरित्र-दोष के कारण 'रागिनी' से हटा दिए गए हैं। अफ़वाह तो यह भी फैली कि विनोद बाबू की बहन रीता के साथ भुवन का अनैतिक सम्बन्ध हो गया था। इसीलिए विनोदजी ने भुवनजी को अपने डेरे और पत्र दोनों से ही हटा दिया। भुवन कई फ़िल्म-डाइरेक्टरों और प्रोड्यूसरों के पास भी गया। लेकिन वहाँ तो और भी अजीब हालत मिली। मशहूर संगीत-निर्देशकों के अपने गीतिकार हैं। मशहूर निर्देशकों के अपने लेखक हैं और अपने अभिनेता हैं। नये कलाकारों की अच्छी चीज़ कबूल करने से फ़िल्म-व्यवसाय को धक्का पहुँचेगा। फ़िल्म-वितरक खिन्ना जाएँगे। भुवन एक सफल अभिनेता के पास भी गया। उक्त अभिनेता महोदय पंजाब के रहने वाले हैं। बड़ी मिहनत से उन्होंने अपना नाम अभिनेताओं की सूची में सबसे ऊपर लिखवाया है। उन्होंने एक थिएटर-कम्पनी भी खोल रखी है। बहुत देर तक तो भुवन उनके इन्तजार में ही बैठा रहा। उसके बाद अभिनेता महोदय राजशाही चाल से झूमते हुए दाखिल हुए। अच्छा डीलडौल पाया था उन्होंने। भुवन ने उठकर अभिवादन किया। अभिनेता महोदय विक्रमादित्य स्टाइल में अभिवादन का

उत्तर देते हुए कुर्सी पर बैठे। बातों के सिलसिले में अभिनेता जी इतनी दूर-दूर की हाँकने लगे कि भुवन अपनी बात कहना ही भूल गया या हिम्मत ही नहीं हुई। उनका कहना था कि लेखक और कवि तो बम्बई में टके सेर मिल सकते हैं लेकिन आज स्टेज-अभिनेता की जरूरत है। लाख ढूँढ़ने पर भी स्टेज-अभिनेता नहीं मिलता। कितनी मिहनत और कुर्बानी के बाद उन्होंने थिएटर-कम्पनी खोली है, लेकिन वह भी अभिनेता और अर्थ के अभाव में अन्तिम सांस ले रही है। भुवन ने महसूस किया कि अभिनेता महोदय में प्रान्तीयता का ज़हर भरा है जो रह-रहकर उनके भ्रम और अहं को उकसा देता है। आखिर वहाँ से भी भुवन निराश ही लौटा। रमाकान्त और मोहन ने राय दी कि भुवन उन्हीं लोगों के साथ रहे। लेकिन भुवन को यह बात मान्य नहीं हुई। भुवन ने मोहन को बता दिया कि वह रामू के साथ ही रहता है लेकिन रमाकान्त इस बात से अपरिचित ही था।

इसी बीच देश-भर में साम्प्रदायिक दंगे शुरू होगए। बम्बई में भी यह आग फैल गई। बिचारी पुलिस असमर्थ थी। दिन दहाड़े दूकानें लूट ली जातीं। निरपराध बच्चों की छाती में छुरे घुसा दिये जाते। गुण्डों की की गोद में पलने वाला धर्म शैतान हो रहा था। मज़हब खून में नहा रहा था। ईश्वर की राह दिखाने वाले जंगलीपन और खूँखारी से स्वर्ग का द्वार खटखटा रहे थे। अजीब वातावरण था। कौन कब मार दिया जाए, कोई ठीक नहीं। नेताओं की महफ़िल में प्रस्ताव की झड़ी लग रही थी। धार्मिकों के दरबार में चँगेज़ और शिवाजी के गुणगान हो रहे थे। गुण्डों के अड्डों पर बोतलों की खलखल और छुरों की चमक गूँज रही थी। भुवन हैरान था।

रामू के अड्डे पर भी काफ़ी धूम होती। रोज़ ही लूट के सामान आते, शराब चलती, और लोग नशे में भूल जाते कि उन्होंने आज कितने मासूमों की निमर्म हत्या की है। भुवन इन सब चीजों को देखता और ऐंटकर रह

जाता। उसने कई बार रामू को समझाना चाहा पर रामू हँसकर टाल जाता।

आज भुवन ने तय किया कि वह रामू को समझाकर ही दम लेगा। अगर रामू उसकी बात नहीं सुनेगा तो वह पुलिस में खबर कर देगा। अभी दो-तीन आदमी नीचे बैठे थे। दोपहर का समय होगा। रामू अपने साथियों के साथ बाहर गया हुआ था। भुवन इस हैवानियत के अंजाम सोचता रहा। कई बार वह विनोद बाबू के मकान से होकर गुज़रा है। एक बार रीता ने उसे देख भी लिया। उस समय भुवन की हालत अजीब होगई। रीता ने पुकारा, लेकिन वह तेज़ी से दूर निकल गया। भुवन की इच्छा होती कि वह एक बार रीता से मिले, दो बातें करे और सारी बातें बतला दे कि वह निर्दोष है, अच्छा है। फिर भी न जाने क्यों भुवन की हिम्मत नहीं होती कि वह विनोद बाबू के दरवाज़े पर कदम भी रखे। अगर विनोद बाबू से भेंट हो गई तो ? नहीं, वह रीता से नहीं मिल सकता। जिन्दगी के बहुत से मसले हैं जिन्हें हल करने में वह अपनी उम्र काट देगा। रीता भी भूल जाएगी धीरे-धीरे, अच्छा है, वह भुवन को आवारा और हत्यारा ही समझे।

और आज भी भुवन विनोद बाबू के मकान की ओर गया था। बरामदे पर कोई नहीं था। भुवन कुछ देर तक सड़क पर खड़ा उस मकान को देखता रहा और एक ठण्डी साँस छोड़कर लौट आया। बेचारी रीता...!

भुवन अभी अपने विचारों में उलझा ही था कि नीचे रामू की आवाज़ सुनाई पड़ी। भुवन तैयार होकर बैठ गया। आज वह रामू से लड़ेगा उसे समझाएगा। और अगर नहीं माना तो..."क्या कर रहे हो बैठे-बैठे ?" रामू उसके सामने ही खड़ा था। भुवन कुछ देर तक देखता रहा। रामू ने मुस्कराते हुए पूछा। क्या घूर रहे हो ? आज मुझे बहुत बड़ी सफलता मिली है। जानते हो, एक सेठ और दो पुलिस आफ़िसरों की हत्या करके लौट रहा हूँ।

"इसमें तुम अपनी सफलता समझते हो ? रोज कितने मासूम और

निरपराध लोगों की हत्या करके धर्म को तुम क्या दे पाओगे?" भुवन की बात सुनते ही रामू ठहाका मारकर हँसने लगा। उसके ठहाके से समूची कोठरी गनगना उठी। लेकिन भुवन गुमसुम रामू के भयंकर चेहरे को देखता रहा। भुवन ने फिर जरा हिम्मत करके कहा—"तुम हँस रहे हो?" जरा उसकी हालत का तो अन्दाजा लगाओ जिसके बेटे की अभी तुम हत्या करके आ रहे हो? वे इस समय अपने चीत्कार से आकाश कँपा रहे होंगे। और एक तुम हो कि किसी की मौत पर रंगरलियाँ मना रहे हो।"

"उन्हें भी हँसना चाहिए।" रामू ने मुस्कराते हुए कहा और अचानक गम्भीर होकर बोला, "दूर जाने की क्या जरूरत है। जरा मेरे दिल पर हाथ रखकर देखो कि यहाँ कौन-सी आग जल रही है? मैंने अपनी सलोनी बेटी-सी प्यारी बहन की हत्या इन हाथों से की है और आज हँस रहा हूँ। मैंने अपनी मस्ती और आनन्द की जिन्दगी खत्म कर दी है और आज मौत की राह पर चल रहा हूँ। क्यों? इसकी जिम्मेदारी किस पर है?—समाज पर। इसी समाज की खातिर मैंने आदमी होकर भी जान-बूझकर, मजबूरन जानवर की वृत्ति अपनाई है। आज की व्यवस्था की वेदी पर अपनी इज्जत, अपना आराम, अपनी हस्ती, अपना भविष्य और यहाँ तक कि समूचा जीवन चढ़ा बैठा हूँ। मैं ही क्यों, आज जितने भी खून की होली खेलने वाले हैं उन्होंने अपना सब-कुछ गँवा दिया है। और यही कारण है कि वे जान का मोह नहीं करते। हम लोग आदमी नहीं, चलती-फिरती लाश हैं जिस पर किसी बात का असर नहीं हो सकता। भुवन, उन नेताओं और समाज के ठेकेदारों से जाकर पूछो कि इस दंगे का जिम्मेदार कौन है। तुम रामू को दोष नहीं दे सकते। रामू तो एक साधन है जिसका उपयोग आज की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था कर रही है। रामू धर्म या राजनीति की गहराइयों को नहीं जानता। उसे तो अपना भोजन चाहिए जो आज उसे मिल रहा है।" भुवन मुँह बाये रामू को देखता

रहा। उसकी सारी हिम्मत हवा होगई। प्रतिशोध की भट्टी में रामू जलकर दहकता हुआ अंगार बन रहा था। अब वह क्या कहकर रामू को समझाये? भुवन इसी उधेड़-बुन में पड़ा हुआ था कि मदन हाँफता हुआ आ पहुँचा। रामू ने घूमकर उसे देखा और पूछा कि क्या बात है?

मदन ने जल्दी में कभी भुवन और कभी रामू को देखना शुरू किया। भुवन कुछ समझ नहीं पाया। रामू ने उलटकर पूछा, "बोलते क्यों नहीं? क्या लकवा मार गया है?"

"विनोद बाबू के मकान पर गुण्डे हमला करने जा रहे हैं। अभी-अभी मुझे खबर मिली है।" मदन ने बहुत मुश्किल से बताया।

"तुम्हें किसने बताया?" रामू ने मदन की ओर बढ़ते हुए पूछा।

"अभी रास्ते में आलम से भेंट हुई थी। वह मसजिद से आरहा था।"

आलम रामू के दल का ही सदस्य था। और इस दंगे के समय वह भी खुलकर लूट, व्यभिचार और हत्या में भाग ले रहा था। रामू ने दो-चार रोज हुए, उसे भगा दिया था, क्योंकि उसने एक लड़की की इज्जत पर हमला किया था। रामू कुछ देर तक सिर नीचा किये सोचता रहा कि भुवन अचानक उठ खड़ा हुआ और बोला—"मैं वहाँ जाता हूँ।" और इतना कहकर वह धड़धड़ाता हुआ नीचे उतर गया। भुवन की हालत इस समय बिल्कुल पागल की-सी हो रही थी। दंगे की वजह से सवारी का मिलना भी मुश्किल ही था। कुछ दूर जाने पर उसे एक टैक्सी मिली। वह सीधे वर्लीचाल पहुँचा और वहाँ से पैदल ही विनोद बाबू के डेरे की ओर बढ़ा। जैसे-जैसे वह डेरे के नजदीक पहुँचता जाता उसकी साँस फूलती जाती। ऐसा लग रहा था जैसे किसी ने उसका कलेजा ही निकाल लिया हो और कलेजे की जगह पर बिल्कुल शून्य पड़ गया हो, और वहाँ तूफ़ान उठ रहा हो। दूर से ही भुवन ने देखा, फ़्लैट पर बहुत से लोग इकट्ठे हैं। भुवन बिल्कुल फ़्लैट पर पहुँच गया। उसने देखा कि इकट्ठे लोग उसी महल्ले के दर्शक हैं और गुण्डे लूट-

पाट कर चले गये थे। गुण्डों ने विनोदजी की तो हत्या कर दी लेकिन रीता को अपने साथ ही लेते गए। भुवन खड़ा रहा कुछ देर। हत्यारों ने विनोद बाबू के पेट में और गरदन में छुरा भोंक दिया था।...और रीता ?...भुवन का सिर घूम गया। वह किससे पूछे कि रीता कहाँ है ? वह सभी कमरों में गया। रीता के सामान इधर-उधर बिखरे पड़े थे। रीता की कोठली में ही उसकी एक कमीज पड़ी थी जिसे रीता ने अपने पास रख लिया था। भुवन ने देखा—रीता की साड़ी खूँटी से लटक रही है। वही साड़ी जिसे पहनकर वह पहली बार भुवन के साथ सिनेमा गई थी और लौटते समय विक्टोरिया में भुवन ने उसे अपनी ओर खींच लिया था। उस कोठली में सब-कुछ था लेकिन रीता नहीं थी। रीता मरी भी नहीं थी। अभी न जाने वह किस हालत में पड़ी होगी ? न जाने गुण्डे उसके साथ कैसा व्यवहार कर रहे होंगे ? जिस रीता के साथ उसने जिन्दगी काट देने की प्रतिज्ञा ली थी; जिस रीता के स्पर्श-मात्र से उसका रोआँ-रोआँ सिहर उठता था। जिस रीता की कोमल देह तरल होकर उसकी आँखों पर, मन पर छा गई थी। वही रीता आज गुण्डों के बीच छटपटा रही होगी, चीख रही होगी और हत्यारे गुण्डे अट्टहास कर रहे होंगे। अपनी भूखी आँखों से निगल जाना चाहते होंगे। भुवन अधिक देर तक वहाँ नहीं रुक सका। वह चुपचाप सिर लटकाए लौट चला। सड़क पर अपने-आप उसके पाँव पड़ रहे थे। इसी शहर के किसी कोने में रीता छटपटा रही होगी और भुवन मजबूर होकर, विह्वल होकर घूम रहा है। इससे तो यही अच्छा होता कि रीता भी मार दी गई होती और रीता की लाश देखकर वह निश्चिन्त हो जाता। भुवन चलता-चलता अपनी पुरानी खोली के पास पहुँच गया जहाँ बम्बई आने पर उसे पहले-पहल शरण मिली थी। वह नौजवान दर्जी भी वहीं बैठा था। दर्जी ने उसे देखते ही पुकारा। अगर कोई दूसरा अवसर होता तो भुवन जल-भुनकर राख होगया होता। लेकिन आज वह तिनके तक का महत्त्व समझ रहा था। दुःख के

समय उम्मीद दिल की कमज़ोरी को उकसा देती है और जलन बढ़ जाती है। दर्ज़ी ने खुद ही सब-कुछ बता दिया कि किस तरह गुण्डे आये, लूट-पाट की और एक लड़की को लेकर चलते बने। दर्ज़ी ने बताया कि लड़की के हाथ-पैर और मुँह बँधे थे। अन्दाज़ से ही उस दर्ज़ी ने अनुमान से बताया कि गुण्डे '...' के रहने वाले हैं।

तब तक रामू भी अपने दल के साथ पहुँच चुका था। सबकी राय हुई कि भाग्य की परीक्षा के लिए गुण्डों के अड्डे पर हमला किया जाए। हो सकता है लड़की अभी वहीं हो। रामू पुलिस की मदद नहीं ले सकता था। और पुलिस जो मदद करती उसे रामू अच्छी तरह जानता था। एक राह से ही हमला करना ठीक नहीं, इसलिए सब लोग तीन दलों में बँट गए। भुवन और रामू साथ ही रवाना हुए।

शाम हो चली थी। सड़कों और दुकानों पर बत्तियाँ जल चुकी थीं। भुवन और रामू अपने साथियों के साथ तेज़ी से चल रहे थे। कुछ ही देर के बाद 'कर्फ़्यू' लग जाएगा। सरकार का रौब छा जाएगा—इसलिए जल्दी पहुँचना था। भुवन तरह-तरह की शंकाओं से दहल उठता। उसके कदम उसके मन से होड़ लेना चाह रहे थे। ऊपर आकाश बिल्कुल साफ़ था। जैसे कहीं कुछ नहीं, शून्य, बिल्कुल बेजान। और झिलमिलाते तारे जैसे अभी से अवसान की नींद ले लेना चाहते हों। सड़क पर भी वही सूनापन, वही खामोशी। कभी-कभी पुलिस की लारी हड़हड़ाती निकल जाती जैसे मौत आई और चली गई। कलेजा निकलकर रह जाता। अजीब वातावरण था। अजीब खौफ़नाक शाम थी, कोढ़ से भरे हुए किसी विकराल दानव की विकृत लाश की तरह, अस्पष्ट धुँधला बीभत्स! भुवन रह-रहकर दाँत पीसने लगता। अपलक-दृष्टि से ताकता हुआ वह बढ़ा जाता। रामू भी खामोश था। भुवन को याद आने लगा कि अभी कुछ ही देर पहले उसने रामू को दंगा करने से मना किया था और

अभी भुवन स्वयं रामू का साथ दे रहा है। उफ्! कैसा बर्बर युग आ गया है। इन्सान ही इन्सान की हत्या कर रहा है। शाम होते ही सड़कों पर आतंक छा जाता। शायद भय, आतंक और जुगुप्सा पर सवार होकर ही आज की सभ्यता आती है।

रामू ने चलते-चलते कहा—

"भुवन, देख रहे हो सभ्यता की पराकाष्ठा को...!"

भुवन चुपचाप चलता रहा। उसके शरीर में एक-साथ हजारों भट्टियाँ जल रही थीं। चारों ओर से जैसे आग की लपटें उठ रही थीं और उसी के बीच भुवन जलता-झुलसता चला जा रहा था। न जाने रीता के साथ ये मजहब के कुत्ते किस कदर पेश आ रहे होंगे। रीता कविता पसन्द करती थी...रीता मुहब्बत करती थी...और अभी रीता कुछ नहीं। देश की तकदीर फोड़ देने वाले नेता महलों में बैठकर अपील निकालते फिरते हैं। उन्हें तो सत्ता की भूख है। इन्सानियत की नहीं। आजादी मिलने पर इज्जत मिलती है, रोटी मिलती है, जिन्दगी मिलती है। लेकिन वाह री हिन्दुस्तान की आजादी। जहाँ आजादी के नाम पर हजारों मासूम बहनों की इज्जत उतारी जा रही है। वाह रे मजहब, आज तुम्हारे नाम पर कितनी रीता और मुमताज बे-आबरू हो रही हैं। भुवन ऐंटकर रह जाता। उसका वश चले तो समूची सृष्टि को फोड़कर रख दे। आदर्श और धर्म के उपदेश देने वालों का गला घोंट दे।

सब लोग '...' मुहल्ला में पहुँच चुके थे। 'कर्फ्यू' लग चुका था। मुहल्ले की सड़क पर खिड़कियों से तीखी रोशनी पड़ रही थी। रामू के दल के अलावा वहाँ और कोई नहीं। कहीं-कहीं एक-आध कुत्ते नजर आ जाते। रामू ने धीरे से पूछा कि उन गुण्डों का अड्डा कौन-सा है। बिचारा आलम डर से स्वयं काँप रहा था। मदन जबर्दस्ती उसे खींच लाया था। उसने बताया कि इसी सड़क से दो सौ गज आगे जाने पर एक गली है

जिसके भीतर उन लोगों का अड्डा है। लेकिन इसके बीच में एक चौमुहानी है जहाँ पर रोज़ पाँच सिपाहियों का पहरा रहता है।

रामू ने सबको आदेश दिया कि ठीक पाँच मिनट के बाद वे लोग उसके पीछे-पीछे चौमुहानी पर आवें। तब तक वह उन सिपाहियों को चकमा देकर एक जगह इकठ्ठा किये रहेगा और फिर एक साथ ही सबों का खात्मा होजायेगा। अभी बातें ही हो रही थीं कि लॉरी की रोशनी दीख पड़ी। सब के सब गली के अन्धेरे में दुबक गए। जहाँ रामू का दल था ठीक वहीं आकर लॉरी रुकी। दो-तीन सैनिक ऑफ़िसर उतरे और इधर-उधर देखने लगे। लॉरी सिपाहियों से खचाखच भरी थी। उन लोगों को शायद कुछ शक हुआ था। कुछ देर तक आपस में बातें करने के बाद वे ऑफ़िसर लॉरी में सवार होगए और लॉरी चली गई। लॉरी के स्टार्ट होने से मुहल्ला एक बार गूँज गया फिर वही सन्नाटा। भुवन आकुल हो रहा था कि कब रीता को ढूँढ़ निकाले। कुछ देर तक रामू चुपचाप रुका रहा। अभी पुलिस लॉरी गई है और वह चौमुहानी पर कुछ देर के लिए जरूर रुकेगी। एक कुत्ता उन लोगों की बगल से गुज़रा और भौंकना ही चाहता था कि मदन ने पुचकारना शुरू किया। बिचारा कुत्ता पूँछ हिलाता हुआ नज़दीक आगया। भुवन आज की स्थिति देखकर फूत्कार कर उठा—'सिपाहियों, गुण्डों और कुत्तों का राज! मज़हब की धाँधली का बीभत्स परिणाम!'

"भुवन तुम भी मेरे साथ ही चलो।" रामू के इस आदेश से भुवन को जैसे जान मिल गई। दोनों मकान से सट-सटकर चलने लगे। मकानों के भीतर से कभी-कभी बातचीत करने की आवाज़ आती और बस। भुवन ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि कभी उसे भी चोरों की तरह लुक-छिपकर किसी के घर पर हमला करने जाना होगा। लेकिन आज उसे कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था। वह केवल रीता को जानता था जो अभी गुण्डों के हाथ में पड़कर छटपटा रही होगी। वह उन गुण्डों के खून का

प्यासा हो रहा था। जिस राह को वह दिन-रात कोसा करता आज वही राह भुवन के लिए फ़र्ज बन रही थी। वाह री परिस्थिति !

सिपाहियों ने दूर से ही रामू को देख लिया। दो सिपाही रामू और भुवन के करीब आ धमके और कुछ पूछना ही चाहते थे कि रामू बचकर भागने का स्वांग रचने लगा। भुवन कुछ समझ नहीं पाया। दोनों सिपाहियों ने रामू को पकड़ लिया और रामू उन लोगों से उलझता रहा जब तक बाक़ी दो सिपाही भी वहाँ पर पहुँचे। क्षण-भर में ही बिना किसी बातचीत के यह घटना घट गई। भुवन को भी दो सिपाही कसकर पकड़े हुए थे। हवालदार खड़ा था। कुछ देर तक तो हवलदार रामू से गाली दे-देकर ही पूछता रहा कि वह कौन है और यहाँ क्या करने आया है। लेकिन रामू को खामोश देखकर हवालदार नज़दीक आया और वह रामू के बाल पकड़ना ही चाहता था कि रामू ने कसकर लात जमा दी। हवालदार काफ़ी दूर जाकर चित होगया। तब तक रामू के सभी साथी वहाँ पहुँच गए और उन सिपाहियों पर टूट पड़े। देखते-देखते बिना किसी हिचक के पाँचो सिपाहियों की लाशें वहीं ढेर होगईं। इस धूम-धड़क्के से मुहल्ले के लोग कुछ चौकन्ने होगए। आसपास के मकानों की खिड़कियाँ बन्द होगईं और चिल्ल-पों मचने लगी। रामू ने आलम को आदेश दिया कि वह रास्ता बतावे। कुछ ही दूर ये लोग गये होंगे कि 'अल्लाहो अकबर' के नारे से मुहल्ला गूँज गया। आलम ने बताया कि यह आवाज़ उसी अड्डे से आई है। सब लोग तेज़ी से उस मकान के करीब पहुँचे। रामू के दल को सिपाहियों की चार बन्दूकें भी हाथ लग गई थीं। गुण्डों के उस अड्डे से कुछ लोग झाँककर देख रहे थे। वह एक, दो मंज़िला पुराना मकान था। मदन ने अपनी बन्दूक उठाकर गोली चलाना चाहा कि अड्डे से एक सनसनाती हुई गोली आई और मदन वहीं लुढ़क गया। भुवन दौड़कर मदन के पास पहुँचा और झुककर उसे उठाना ही चाहता था कि रामू ने पीछे से पकड़

लिया। "लाश से मुहब्बत नहीं की जाती," और इतना कहकर उसने मदन के बगल में गिरी हुई बन्दूक उठा ली।

चारों ओर से मकान घेर लिया गया। कुछ लोगों को तो रामू ने नीचे से ही गोली मारकर खत्म कर दिया था और कुछ लोग नीचे उतर आये थे जो जान लेकर भागने के फ़िराक में वायु पर जूझ रहे थे। अजीब रोमांचकारी दृश्य था।

'क्या रीता इसी में होगी? अगर रीता के साथ इन जानवरों ने कुछ ...उफ्' भुवन आगे सोच नहीं पाया।

"तुम यहीं खड़े रहो।" इतना कहकर रामू दस साथियों के साथ ऊपर चला। रामू ने देखा कि ऊपर लगभग सात-आठ आदमी हैं जो रामू को देखते ही फ़क पड़ गये हैं। उनमें से एक तो वहीं से नीचे कूद पड़ा। भुवन अपने को रोक नहीं पाया और वह भी रामू के पीछे हो लिया था। रामू ने निर्दयतापूर्वक सबों की हत्या कर दी। चीखों से सारा मुहल्ला गूँज रहा था। उस छोटे से मकान में मौत नाच रही थी। मुहल्ले के सभी लोग चेतन हो गए थे और 'अल्लाहो-अकबर' के नारे से भय का भूत भगाने का उपक्रम कर रहे थे। ठीक, तो भगवान का जन्म भी भय के बीच से ही हुआ है। और आज तक भय के समय ही वह याद भी आता है केवल आत्म-सन्तोष के लिए।

रामू ने सभी कोठलियों में घुस-घुसकर देखना शुरू किया लेकिन कहीं कुछ नहीं था। एक कोठली में ताला पड़ा था जिसका दरवाजा बीच वाले हॉल में पड़ता था। रामू निराश होकर पीछे जो लौटा तो देखा भुवन खड़ा है। अवाक् 'निस्तेज' बेजान!

"इस ताले को तोड़कर देखा जाये।" रामू ने दरवाजे की ओर रुख फेरते हुए कहा।

जब ताला तोड़कर लोग भीतर पहुँचे तो शराब की खाली बोतलों के

अलावा वहाँ कुछ भी नजर नहीं आया। भुवन तो जैसे पत्थर होगया। सब लोग खामोश थे। भुवन धीरे-धीरे टहलता हुआ खिड़की के करीब पहुँचा और बाहर आकाश की ओर देखने लगा। मुहल्ले में शोर-गुल मचा ही हुआ था। भुवन की इच्छा हो रही थी कि वह अपना गला आप घोंट ले। उसकी सांस फूल रही थी और वह फूट-फूटकर रोना चाह रहा था।

"चलो। अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं है। हम लोग पता लगाने की कोशिश करेंगे।" रामू ने भुवन की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा, और फिर उसने खिड़की से नीचे झाँककर देखा तो कुछ देर तक देखता ही रह गया। नीचे सड़क पर हल्की-हल्की रोशनी पड़ रही थी। रामू ने देखा कि सड़क पर कोई आदमी पड़ा सुगबुगा रहा है। उसने भुवन को भी दिखाया। भुवन कुछ देर तक योंही देखता रहा और अकस्मात् बोल उठा, "कोई औरत मालूम पड़ती है!" और एक आकस्मिक भय से भुवन सिहर उठा।

सब-के-सब नीचे उतर आए। मकान के पिछले भाग में वह औरत पड़ी थी। न जाने क्यों भुवन का कलेजा बहुत जोर से धड़क रहा था। रामू ने देखा सचमुच एक औरत ही थी जो मुँह के बल पड़ी थी और उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। आहिस्ता से रामू ने उस औरत का कंधा पकड़कर सीधा कर दिया। भुवन रामू की बगल में ही खड़ा था। औरत कुछ बुद-बुदाई। भुवन की नजर जो उस औरत पर पड़ी तो वह सन्न-से रह गया। वह रीता ही थी।

रामू ने सिर उठाकर भुवन की ओर देखा और अब कुछ समझ गया। भुवन फटी आँखों से एकटक देख रहा था जैसे उसकी पलक कभी गिरेगी ही नहीं।

रीता फिर कुछ बुदबुदाई। भुवन रीता पर झुक गया। रीता ने एक बार आँखें खोलकर देखा और कुछ देर तक देखती रही। उसका सिर फट गया था और मुँह से खून बह रहा था। भुवन ने रीता के सिर पर हाथ

रखा। और रीता के अधर थोड़ा खुले फिर खुले-के-खुले ही रह गए। 'अल्लाहो-अकबर' का नारा अभी भी गूँज रहा था। भुवन चुपचाप उठ खड़ा हुआ, जैसे एक नया युग खड़ा होता है—तूफ़ान की तरह गम्भीर। जैसे वह रामू को कह रहा हो कि अब इस समाज को बदलना ही होगा। जैसे भुवन रामू को बता रहा हो कि आज के राजनीतिक दाँव-पेंच का यही अंजाम होता है। जैसे धर्म का यही उद्देश्य हुआ करता है। भुवन की आँखें बिल्कुल बुझी थीं। और रीता की लाश पड़ी थी—रीता की लाश, जिसमें कभी कविता की तरलता लहरें मारा करती थी। रीता जो एक चुलबुली लड़की थी जिसके दिल में कितने रंगीन सपने रोज़ बना करते थे। और आज जैसे स्वयं रीता सपने की तरह ही बेजान हो रही थी।

भुवन ने एक बार रीता को देखा। रीता अभी भी खूबसूरत थी, रीता अभी भी चुलबुली थी। लेकिन पाकिस्तान घृणित था। हिन्दुस्तान बीभत्स था। सारा संसार विकृत था। दूर पर 'अल्लाहो-अकबर' का नारा थक चुका था।

नीचे सड़क पर मज़हब की लाश पड़ी थी। और भुवन की आँखों में रीता खूँखार हो रही थी।